ॐ

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—कृष्णानन्द

आषाढ़ सम्वत् १९८५ ।

वार्षिक चन्दा २।

एक प्रतिका ।)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा।

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व पुस्तक सम्बन्धी सब व्यवहार मैनेजर भक्तिके नामसे होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर का लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
१. मंगलाचरण	२९७
२. प्रार्थना (कविता) [ले० श्री० रामनारायण जी धमदाहा, पूर्णिया	३००
३. संसार समाचार	३००
४. प्रार्थना (सम्पादक]	३०१
५. सत्य [श्रीमती सूरज देवी]	३०३
६. नारायणोपनिषद्	३०६
७. श्री कृष्ण चरित्र [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	३०७
८. धर्मोपदेश " "	३११
९. आयुर्वेद शिक्षा [ले० श्री पं० रामरक्षपाल जी वैद्य शास्त्री	३१४
१०. मानव धर्मसार	३१६
११. ऋषियों के आश्रम [ले० श्री० पं० जयराम सनातन देहली	३१९
१२. हमारा वृक्षों से महान् उपकार [ले० श्री० पं० रघुनाथ स्वामी नरेला, दिल्ली	३२२
१०. भजन	३२५

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा २)

भक्ति

एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ़पूर्णिमा सं० १९८५। { अङ्क १०

मङ्गलाचरण।

श्रीकृष्ण कृपा कटाक्षस्तोत्रम्

भजे वृजैक मंडनं समस्त पाप खंडनं।
स्वभक्त चित्त रंजनं सदैव नन्द नन्दनम् ॥ १ ॥

ब्रज की प्रधान शोभा रूप सम्पूर्ण पापों के नाश कारक, अपने भक्तों के चित्त को सदा प्रसन्न करने वाले श्री कृष्णचंद्र को मैं स्मरण करता हूं ॥ १ ॥

सुपिच्छ गुच्छ मस्तकं सुनाद वेणु हस्तकं।
अनंग रंग सागरं नमामि कृष्ण नागरम् ॥ २ ॥

सुन्दर मयूर पुच्छों के समूह का मस्तक पर मुकुट है जिनके, मनोहर शब्द वाली बंशरी है हाथ में जिनके काम देवकी कान्ति के समुद्र रूप, श्री कृष्ण चन्द्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

मनोज गर्भ मोचनं विशाल भाल चन्दनं ।
सुपीत वस्त्र शोभनं नमामि पद्म लोचनम् ॥ ३ ॥

काम देव के अहंकार को नष्ट करने वाले, विस्तीर्ण (बड़े) मस्तक में शोभायमान है चन्दन जिनके, सुंदर पीताम्बर वस्त्रों करके जो शोभायमान, कमलजैसे नेत्र हैं जिनके, ऐसे श्री कृष्णचंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥

करारविन्द भूषणं स्मितावलोक सुन्दरं ।
महेन्द्रमान दारणं स्मरामि कृष्ण वारणम् ॥ ४ ॥

कमल रूपी भुजा से शोभित, मन्द हास्य युक्त दृष्टि से सुंदर है मुख जिनका, इन्द्र के अहंकार को नष्ट करने वाले श्री कृष्णचंद्र को मैं स्मरण करता हूं ॥ ४ ॥

कदम्ब सूनु कुण्डलं सुचारु गंड मंडलं ।
वृजांगनैक वल्लभं नमामि कृष्ण दुर्लभम् ॥ ५ ॥

कदम्ब पुष्पों का है कुण्डल सुंदर कपोलों से युक्त, व्रज की स्त्रियों के मुख्य प्यारे, ऐसे दुर्लभ श्री-कृष्णचंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

यशोदया समोदया सकोपया दयानिधिः ।
उलूखले सुदुस्सहं नमामि नन्द नन्दनम् ॥ ६ ॥

हर्ष और क्रोध युक्त यशोदा से ऊखल में बंधे हुए, दयाके समुद्र नंद जी के पुत्र श्री कृष्णचंद्र को नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥

नवीन गोप नागरं नवीन केलि सागरं ।
नवीन मेघ सुन्दरं भजे वृजैकमन्दिरम् ॥ ७ ॥

युवा अवस्था वाले गोपों में श्रेष्ठ, नूतन २ क्रीड़ा के समुद्र, नवीन बादल जैसे सुंदर श्याम वर्ण, व्रजकी शोभा रूप, श्री कृष्ण चंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

सदैव पाद पंकजं मदीय मानसेनिजं ।
ददामि नन्द बालकं समस्त भक्त पालकम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण भक्तों की रक्षा करने वाले कृष्णचंद्र के चरणारविन्द को मैं अपने हृदय में धारण करता हूं ।८

समस्त गोप नागरं दृगम्बुजैक मोहनं ।
नमामि कुंज नायकं प्रसून भानु शोभनम् ॥ ६ ॥

सम्पूर्ण गोपों में सुन्दर, अपने कमल नेत्रों से मोहने वाले कुञ्जों के नायक, पुष्पों के धारण में सूर्य जैसी कान्ति वाले श्री कृष्णचंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥

दृगन्त कान्ति रंजनं सदा सदालि संगिनं ।
दिने दिने नवं नवं नमामि नन्द संभवम् ॥ १० ॥

भृकुटी की कान्ति को रंगने वाले श्रेष्ठ भ्रमरों से सदा शोभायमान, प्रतिदिन नवीन २ सुंदरता को धारण करने वाले नंद जी के पुत्र श्री कृष्णचंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥

गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं सुधाकरं ।
सुरासुरा सुदायकं नमामि गोप नायकम् ॥ ११ ॥

जो सब गुणों की, सुखों की, कृपा की अमृत की, खान हैं, देवों के देव हैं, दाताओं में श्रेष्ठ हैं, गोपों के नायक हैं ऐसे श्री कृष्ण चंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ११ ॥

समस्त दोष शोषणं समस्त लोभ शोषणं ।
समस्त दास मानसं नमामि कृष्ण लालसम् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण पापों को नाश करने वाले तथा लोभ को नष्ट करने वाले और सब भक्तों के हृदय में रहने वाले श्री कृष्णचंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १२ ॥

समस्त गोप नायकं निकामकाम दायकं ।
दृगन्त चारु सायकं नमामि कृष्ण नायकम् ॥ १३ ॥

संपूर्ण गोपों में श्रेष्ठ, निष्काम काम के दाता, धनुष के समान सुंदर भृकुटी वाले सर्वोत्तम, श्रीकृष्ण-चंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १३ ॥

भयं भवाब्धि तारकं भवाब्धि कर्ण धारकं ।
यशोमते किशोरकं नमामि दुग्ध चोरकम् ॥ १४ ॥

भयंकर संसार रूपी समुद्र से तारने वाले, संसार रूपी समुद्र के कर्णधार (पार लंघाने वाले) यशोदा के पुत्र दुग्ध के चुराने वाले श्री कृष्णचंद्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥ १४ ॥

प्रार्थना

[ले० श्री रामनारायण जी धमदाहा, पूर्णियां ।]

कृपा करहु अब तो करतार !

बड़ा पाप जाता है शिर पर, सहित सकत हौं भार। तुअ बिनु पाप हरे को मेरो, और लगावे पार ॥
दीनबंधु अब बेगि दया करि, लीजै खबर हमार। जीवन नैया डूबन चाहे, तू ही बचावन हार ॥
किस को कहूं सुने को मेरी, हे हरि ! जगदाधार। 'रामनारायण' करत आसरो, केवल एक तुहार ॥

संसार समाचार।

चटगांवके निकट मकान की नींव खोदते समय बौद्ध मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्त्तियां एक हज़ार वर्ष की पुरानी बतायी जाती हैं। कहा जाता है कि जिस व्यक्तिने इन मूर्त्तियों की खोज की है उसे सरकारकी ओर से पुरस्कार मिलेगा। मूर्त्तियां बहुत साफ और देखने में बड़ी सुन्दर हैं। मूर्त्तियां प्रचीन भारतके बौद्ध और वर्तमान वर्मा की कलाकी मिश्रित उदाहरण हैं। मूर्त्तियां पीतल और कांसेकी हैं। पुरातत्व और खोज विभागके विद्वानों का ध्यान अब इधर आकृष्ट किया गया है। ट्रेजलट्रोव एक्टके अनुसार ये मूर्त्तियां चोरंगी के अजायबघर में लाकर रखी जायंगी। एक मुसलमान महाशय मकान की नींव खुदा रहे थे कि उन्हें मूर्त्तियां मिल गयी। सब मिलाकर ६३ मूर्त्तियां एक सुंदर पत्थर के मंदिरमें मिली हैं। तुरंत ही जी० डब्लू० डेविसको इस खोज का समाचार भेज दिया गया था। उन्होंने आज्ञा निकाल दी कि मूर्त्तियों पर पहरा बैठा दिया जाय। पुनः बंगाल सरकार की आज्ञा से जो कुछ होगा वह किया जायगा। २ फुटसे लेकर १५ फुटतक मूर्त्तियों की ऊंचाई है। विद्वानोंने अन्दाज किया है कि यहांपर कोई विहार रहा होगा। जब १३ वीं सदीमें किसीने विहार पर चढ़ाई की होगी तब भिक्षुओंने मूर्त्तियां गाड़ दी होंगी। मुसलमान या पुर्तगाल आक्रमणों के समय ऐसा हुआ होगा। मूर्त्तियोंपर लिखे हुए लेखों से पता लगता है कि वे ४ वीं या १० वीं सदीकी हैं।

जम्मू रियासत के मीरपुर स्थान में एक कम्पाउण्डरके यहां एक विचित्र लड़की पैदा हुई है। उसके ३२ दांतों के अलावा कन्धे पर दो सींग हैं। पसलियों के दोनों ओर मश्कको तरह पानी से भरी हुई थैलियां हैं। उसका वजन ५ सेर था। लड़की पैदा होने के थोड़ी देर बाद मर गयी।

आस्ट्रेलिया के जीना स्थानसे एरिक संडरलैण्ड नामक व्यक्ति नृत्य करता हुआ निकला। रास्ते में लड़कियोंकी भीड़ थी थोड़ी थोड़ी दूर तक एक एक के साथ नाचता रहा और ११ घण्टे ३५ मिनटमें ५० मील तक नृत्य करने के अलावा मेलबोर्न पहुंच गया।

वैज्ञानिकों ने गणित करके हिसाब लगाया है कि पृथिवी अधिक से अधिक ५ अर्ब मनुष्यों का भरण पोषण कर सकती है। जिस गति से अब जन संख्या बढ़रही है यदि इसी प्रकार बढ़ती रही तो १०० वर्षमें यह संख्या पूर्ण होजायगी। इस बढ़ती हुई जन संख्या को रोकने का एक मात्र उपाय स्त्री पुरुष अविवाहित रह कर संयम से रहें यही हो सकता है।

प्रार्थना ।

मारे कल्याण के लिये हमारे पास क्या साधन है ।? यह प्रश्न जी में उठता है तो उत्तर मिलता है कि भगवान की प्राप्ति के अनेक साधन हैं । अनेक प्रकार के योग हैं । लय-योग, राजयोग, हठयोग, सहजयोग और भक्तियोग इत्यादि । परंतु साथ ही यह भी लिखा पाते हैं कि सब योग भगवान् की दया और गुरु द्वारा साधन किए जा सकते हैं । अब भगवान् की प्राप्ति में भगवान् की कृपा और दया का तो जिकर ही क्या है ? वह तो कृपा सिंधु ही कहलाते हैं और इस को सब जानते भी हैं संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जो उस की कृपा से वंचित रहा हो । कौन ऐसा जीव है जिस ने अनेक वार उसकी कृपा का अनुभव न किया हो । नास्तिक भी यह बात नहीं भुला सकता कि जब अत्यन्त प्रेम करने वाले माता पिता भी जो अपने पुत्र पर प्राण न्योछावर करने में आनन्द मानते हैं कुछ सहायता न कर सके हैं फिर संसार के वैभव का तो क्या जिकर है तब भगवान् ने शीघ्र कृपा की । भगवान् की क्या तुलना हो सकती है । प्रकृति के समस्त अणु और प्रमाणुओं का अन्दाजा तो सम्भव है परंतु वह तो तोल और मापसे ऊपर है । परंतु योग तो गुरुगम्य है और इस सम्बन्ध में भगवान् की दया न हुई हो अर्थात् योग्य गुरुकी प्राप्ति न हुई हो तो क्या किया जावे ? फिर बताओ हमारा कल्याण कैसे हो ? निष्काम कर्म द्वारा हो सकता है । बात ठीक है भगवान् स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि निष्काम-कर्म द्वारा बेड़ा उद्धार हो जावेगा परन्तु निष्काम कर्म भी गुरु के बिना कैसे बने ? जब तक मन और इंद्रियों द्वारा मिली हुई बुद्धि से सोचा और विचारा जाता है और अपने ज्ञान के आधार पर कर्म किया जाता है तब तक वह निष्काम कर्म कैसे हुवा ? निष्कामता में तो स्वतः मिल जाने वाला कर्म होता है वहां निश्चित प्रोग्राम नहीं हुवा करता है । वह कर्म तो प्रकृति द्वारा प्रकृति में आप होता है । यह निष्कामता कैसे हो ? हां कर्ता कर्म फल का त्याग कर सकता है । परंतु त्याग द्वारा कल्याण नहीं होता । कल्याण तो निष्कामता से ही होगा । फिर तो यह भी गुरु द्वाराही प्राप्ति सम्भव हुई । कारण अपनी इच्छा से न किया हुवा और गुरु की आज्ञा से किया हुवा कर्म अपने पर लागू नहीं हो सकता और वही निष्काम कर्म का आरम्भ है परंतु उस के लिए भगवान् जैसे या जनक जैसे गुरु मिलें और हम सखा अर्जुन और भक्त शुकदेवजी की भांति हों । परंतु यह दोनों बातें न हों तो बताइए हमारे पास ऐसा कौनसा साधन है जिस से हम उस तक पहुंचें, उस से मिलें और अपना कल्याण करें । मेरे साथ साथ २ आप भी इस नतीजे पर पहुंच गए होंगे कि हमारे पास केवल प्रार्थना ही ऐसा साधन है जिस को हम स्वतंत्र साधन कह सकें ।

प्रार्थना सब से सहल है इस लिए सब से छोटा नहीं बल्कि सब से बड़ा साधन है और भगवान् दीनानाथ व दीनदयालु हैं इस लिए भगवान् ने अपने मिलने के लिए दीनको ही अधिक साधन प्रदान किए हैं । यदि ऐसा न होता तो भक्तों का रक्खा हुवा दीनानाथ और दीन दयालु दिया हुवा शब्द अकार्थ जाता है । परंतु यह कब सम्भव है ?

भगवान् भक्तों के वचन को कभी अकार्थ नहीं जाने देते। वह अपनी प्रतिज्ञा न रख कर सदैव भक्त की प्रतिज्ञा रक्खा करते हैं तबही अविनाशी होते हुए नाम वाले होगए। यह सब से बड़ा मंत्र प्रयोग है और बहुत शीघ्रफल देने वाला है, आप सब को इस का ज्ञान है क्योंकि आप सब ने समय २ पर भगवान् से प्रार्थनायें की हैं और वह सब स्वीकृत हुई हैं। प्रार्थना भगवान के पास इतनी शीघ्र पहुंचती है कि हम उस का अनुमान नहीं कर सकते। प्रार्थना का अर्थ है जीव का भगवान को याद करना चाहे अंशांशी समझ कर चाहे सेवक सेव्य के भाव से और चाहे भक्ति से मातृ, पितृ किसी भी भाव से वह शीघ्र सुनता है और सुने भी किस तरह नहीं जबकि वह उस का अत्यंत निकटवर्ती है। उपनिषद् में भी कहा है कि भगवान तो जीव को इस प्रकार याद करते हैं जिस तरह व्याई हुई गौ जंगल में जाकर अपने बच्छे को परन्तु इस में हमारी ही कमी रहती है। आइए हम सब मिलकर प्रार्थना करना आरम्भ करें समय २ पर प्रार्थना करते तो अवश्य हैं परन्तु उस को एक नियम में बांध लें, अर्थात् प्रकृति के चक्र में अपनी समता कर लें। उस को देश व काल के अनुकूल बना लें और उसमें निरन्तरता को दृढ़ करने का पूरा प्रयत्न करें। प्रार्थना कैसी होनी चाहिए हम लोग स्वतंत्रता से विचार करें जो जैसा चाहे उसी के लिए भगवान् से प्रार्थना करें और करेंगे भी वही। क्यों कर्म-ज्ञानपर निर्भर है जैसा ज्ञान होगा वैसा ही कर्म करेगा ज्ञान लोगों में भिन्न २ होगा इस लिए प्रार्थनायें भी भिन्न होंगी परंतु इच्छा सब की यही रहती होगी कि जैसा मेरे लिए हो वही सब के लिए हो। इस से यह तो ज्ञान होता है कि जीव की स्वाभाविक रुचि ऐसी है कि वह सब को अपने तुल्य ही चाहता है फिर कुछ भी हो परन्तु इस बात से सब ही सहमत होंगे कि सब की प्रार्थना में एक बात व्यापक अवश्य होनी चाहिए और वह यह कि सब का भला हो बिना इस के वह भगवान के पास अपना पूर्ण सन्देशा नहीं लेजा सकेगी और जब पूर्ण सन्देशा ही न ले जा सकेगी तो फल कहां से पावेगी। इस लिए इस बात के बिना उसका अपना स्वार्थ भी पूरा नहीं होगा कारण सर्वव्यापकता के बीच जो माया का जाल तुम ने फैला दिया इस से तुम्हारी वस्तु अपंग रही कारण वही तो कानों का कान और नाकों का नाक और मनों का मन है। इस लिये मेरे प्यारे भाइयो! आओ सब पहले प्रार्थना को अपनावें और इस में भी संदेह नहीं कि केवल इसी साधन द्वारा सब प्रकार का कल्याण हो जावेगा। मांगना आरम्भ कर दो उसके यहां देरी नहीं है वह सब कुछ देता है। हम को भी देगा और खूब देगा। यदि मेरी प्रार्थना मानो तो भगवान से भक्ति मांगो किस की भक्ति? उसकी भक्ति। कैसी भक्ति? उसकी याद और स्वरूपकी सेवा। उस के स्वरूप की क्या सेवा? उस की बनाई हुई फुलवाड़ी चर अचर सबकी सेवा, उसके पुत्रों की सेवा अपने ज्ञान के अनुसार कुछ कहो कुछ मानो और कुछ करो। यही मेरी भगवान् से और आप भाई बहनों से प्रार्थना है।

सम्पादक

सत्य।

सप्तांक से आगे।

(ले० श्रीमती सूरजदेवी)

पिछले के भक्ति के अंक में सत्य के विषय में बहुत कुछ आचुका है। परंतु फिर भी सत्य के महात्म्य तथा प्रभाव का कुछ अन्त नहीं है क्योंकि सत्य भगवानका रूप है। भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी ने सत्य भाषण का कैसा महत्व दिखलाया है। लंका में जिस समय लक्ष्मण जी को शक्ति लगती है तो रामचंद्र जी विलाप करते हुए कहते हैं कि:-

तात का शोच न मातका शोच न,
शोच नहीं मोय अवध तजे को ।
बनवास लिए को शोच नहीं,
और शोच नहीं मोय गृद्ध मरे को।
बालि हते को शोच नहीं,
और शोच नहीं मोय लंक जरे को।
लक्ष्मण मूर्छित शोच नहीं,
और शोच नहीं मोय विपत्ति परे को ॥
शोच तो है इक तुलसी मोहे,
भारी विभीषण पैज दिये को ॥ १ ॥

इसको पढ़ कर कौन ऐसा हृदय शून्य मनुष्य होगा जिसको अपनी बात पर पक्का रहने का विचार न आयेगा। जिस श्रीरामचंद्र जी ने सीता के वियोग में जड़ों को चैतन्य मान कर अपनी करुण कहानी सुनाई वेही अपनी बात को निबाहने के लिए अपने प्रिय स्वजन तथा भक्त सीता का दुःख कुछ नहीं समझते हैं-धन्यथा वह युग और धन्यथी वह वसुंधरा जिस पर ऐसे बात के धनी थे। सत्य वचन पालन करने के लिए धन, जन, देह, गेह आदि को कुछ नहीं गिनते थे। यथा:-

सत्य के परिणाम वर रामचंद्र इतिहास।
पाण्डव दशरथ रामजी तन छोड़ा बनवास ॥
पुत्रप्यारे जगत में पुनि पुत्रन से प्राण।
राजा दशरथ ने दोनों तजे एक वचनको मान

संसार में मनुष्य सर्वदा जीता नहीं रहता परन्तु उसका यश और कीर्ति सर्वदैव अमर रहती है जिन की जिह्वा क्षण २ में बदलती रहती है उनका मुख मुख नहीं है।

एक राजा की एक रानी अत्यंत रूपवती थी एक दिन वह महल पर खड़ी हुई अपने केश सुखा रही थी। अचानक किसी कौवे ने उड़ते२ बींट करदी वह बींट रानी के केशों पर गिर गई। रानी को यह देख कर बड़ा क्रोध आया और वह कोप भवन में जा लेटी। राजा जब महलमें आए तो रानी को न देख कर उनके होश हवास उड़ गए क्योंकि राजाको रानी बहुत प्यारी थी। तब हिम्मत करके राजा ने दासी से पूछा कि रानी कहां है। दासी ने कहा कि कोप भवन में है। बस:-

"कोप भवन सुनि सकुचे राऊ,
भयवश आगे परत न पाऊ"।

परंतु जैसे तैसे राजा कोप भवन में गए और रानी से कोप का कारण पूछा। रानी ने कहा,

महाराज ! आज मैं महलों की छत पर केश सुखा रही थी कि एक दुष्ट कौवे ने मेरे सिर पर बींट कर दी, अतः जब तक तुम उस कौवे को नहीं मरवा डालोगे, मैं अन्न जल नहीं ग्रहण करूंगी। राजा ने कहा-रानी तू कैसी है, पक्षियों को क्या ज्ञान है कि यह रानी है या साधारण स्त्री है। पक्षी तो योंही यत्र तत्र बींट कर देते हैं। परंतु रानी ने कहा नहीं जब तक नहीं मरवाओगे मैं नहीं उठूंगी तब राजा ने कहा "अच्छा उठो हम कल सब कौवों को पकड़ कर अपराधी कौवे को मरवा डालेंगे"। रानी यह सुन कर उठी और अपने आभूषणादि धारण किए। दूसरे दिन राजा ने अपने भृत्यों को आज्ञा दी हमारे राज्य के सब कौवों को पकड़ लाओ। भृत्यों ने ऐसा ही किया। और आकर कहा महाराज ! सब कौवे तो आ गए परन्तु एक कौवा नहीं आया है। राजा ने कहा, उसे भी लाओ नौकर ने कहा, महाराज ! हम कई बार बुला आये हैं आता होगा। राजा ने मन में विचारा हो न हो वही कौवा अपराधी है। राजा विचार ही रहे थे कि कौवा आगया। राजा ने कहा सब कौवे पहिले ही आ गये तुम ने देर कहां की ? कौवे ने कहा "महाराज! अपराध क्षमा हो, मेरे पास एक न्याय आ गया था उसे चुकाने में देरी लग गई" राजा ने कहा, "क्या न्याय था" कौवे ने कहा महाराज यह न्याय था कि कोई तो कहते थे स्त्री अधिक हैं, कोई कहते मर्द अधिक हैं, कोई कहते कि दोनों बराबर हैं। राजा आश्चर्य में भर गया कि ऐसा झगड़ा जिसका न्याय करने में मैं भी असमर्थ हूं फिर कौवे ने क्या न्याय किया होगा। ऐसा विचार राजा ने कहा, "फिर तुम ने क्या न्याय किया" कौवे ने कहा मैंने कह दिया स्त्री अधिक हैं क्योंकि स्त्री तो स्त्री हैं ही परन्तु जो पुरुष कामना वश धर्माधर्म का विवेक छोड़ कर अपनी स्त्री की आज्ञा मानता है वह भी स्त्री है। अतः स्त्रियां अधिक हैं। राजा ने मन में विचारा मैं भी उन स्त्रियों में शामिल हूं जो रूप अथवा काम वश अपनी रानी की अनुचित बात मान निरपराध पक्षियों को मरवाने को तत्पर होगया, यह समझ राजा ने कौवों से कहा, जाओ कौवो सब उड़ जाओ। रानी ने जब यह समाचार सुना तो तुरंत ही कोप भवन में जा विराजी। राजा जब फिर महल में गये तो देखा कि रानी नहीं है। दासी से पूछने पर ज्ञात हुवा कि कोप भवन में है। राजा ने जाकर उसे अनेक प्रकार से समझाया कि रानी पक्षियों पर क्रोध नहीं किया करते हैं वे अज्ञान हैं। रानी ने नहीं माना और कहा, कि बस कौवे की बात मानी गई हमारी कहां मानी। राजा ने रानी का विशेष हठ देख कर कहा, अच्छा उठो हम फिर कल सब कौवों को बुलवा कर अपराधी को मरवा देंगे। तब रानी उठी दूसरे दिन राजा ने फिर भृत्यों को कौवे पकड़ने की आज्ञा दी। भृत्य सब कौवे पकड़ लाए परन्तु वह कौवा फिरभी नहीं आया। राजा ने कहा निश्चय वही कौवा अपराधी है अब के उस को अवश्य ही मरवा डालेंगे। ज्योंही वह कौवा आया राजा ने पूछा कि क्यों रे कौवे, तूने देरी क्यों की। कौवे ने कहा, महाराज अपराध क्षमा हो, एक न्याय आ गया था, उस के चुकाने में देरी होगई। राजा ने कहा, कैसा न्याय था। कौवे ने कहा, महाराज दो पुरुषों में विवाद था, एक एक से कहता था कि तेरा मुंह नहीं है, पाखाने का स्थान है। दूसरे ने कहा, मुंह कहीं गुदा हो सकता है ? बस यही विवाद था उन्हों ने गुरु से आकर पूछा कि कहीं मुंह गुदा हो सकता है ? मैंने कहा हां हो सकता है जो कह कर पलट जाय या झूंठ बोल जाय वह मुख मुख नहीं है किंतु गुदा है। राजा ने यह सुन कर सब कौवों को

छोड़ दिया। यह कथा चाहे अलंकार रूप से हो परंतु वचन को दृढ़ करने की तो शिक्षा मिलती ही है। किसी कवि ने कहा है:-

हस्ति दन्त समानहि निसृतं महतां वचः।
कूर्मग्रीवेव नीचानां पुनरायाति याति च॥

महत पुरुषों के वाक्य हाथी के दांतों के समान होते हैं, यानी निकलगये सो निकलगये एक बार जो वाक्य उच्चारण कर दिया उसे बदला नहीं। परंतु नीचों के वाक्य कछुओं की गर्दन के समान कभी बाहर कभी भीतर। किसी भाषाके कविने भी क्या ही अच्छा कहा है।

बातहिं ते दशरथ मरे,
अरु बातहि राम फिरे बनमाई।
बातहिं से हरिचन्द सहे दुःख,
बातहिं राज्य दियो पुनि भाई॥
रे मन बात विचार कहु,
बात की गात में राख सचाई।
बात ठिकाने नहीं जिनकी,
तिन बाप ठिकाने न जानेहु भाई॥

अहा! कितना सत्य का महत्व है एक ज़बान ही की बात थी जिस से हरिश्चंद्र दशरथादि ने इतने कष्ट कहे। उस अपनी बात को जो पैज नहीं धरते हैं। उन के लिये जो कुछ कहा जाय सो थोड़ा है।

एक समय अश्विनी कुमार एक ऋषि के पास आत्म ज्ञान प्राप्त करने के लिये गये। ऋषि ने कहा, अभी तुम विवेकादि साधनों से रहित हो प्रथम अधिकारी बनो। तब तुम को उपदेश दूंगा। अश्विनी कुमार यह सुन कर चले गए। कुछ दिन पीछे उस ऋषि के पास इंद्र आया, ऋषि ने इंद्र का आदर सत्कार किया और कहा, आप का आगमन किस लिए हुआ। आप मेरे अतिथि हैं जो कुछ आप कहें वही मैं करूं। इंद्र यह सुन कर कहने लगा ऋषिराज जिस आत्म ज्ञान से संसारी मनुष्य वंचित हैं वह मुझे दीजिये। ऋषि ने अपने मन में विचारा कि इंद्र मोहादि माया जाल में फंसा हुआ है आत्म ज्ञानका अधिकारी नहीं है, और यदि उपदेश नहीं देता हूं तो मेरा वचन असत्य होता है। ऐसा मन में समझ इंद्र को उपदेश देने लगे, कि हे इंद्र! जो दुनियां के पदार्थ तथा सुख हैं वे क्षणिक और नाशवान हैं और राजा, इंद्रादि की उपाधि भी नाशवंत है। जो सुख तुम को अपने राज्य तथा इंद्राणि से प्राप्त है, वही सुख कुत्ते को अपने पिल्लों तथा कुत्तियों के संग में प्राप्त है ज्ञान होने पर सब झूंठा झगड़ा है ऋषि ने ऐसे ही अनेक प्रकार से उपदेश दिया। अधिकारी न होने से इंद्र को बुरा लगा कि यह तो कुत्ते को और मुझ को बराबर बताता है, क्रोध में आकर कहा कि यदि ऐसा उपदेश फिर किसी को दिया तो वज्र से तेरा सिर धड़ से अलग कर दूंगा। ऋषि यह सुन कर शाप देने में समर्थ होने पर भी शांत ही रहा। कुछ दिनों में अश्विनी कुमार सब साधनों से युक्त होकर आये और उपदेश की प्रार्थना करी। ऋषिने कहा, कि तुम्हारे पीछे इंद्र आया था उसने मुझे यह कहा है कि यदि तुम किसी को तत्व ज्ञान का उपदेश दोगे तो वज्र से मार दूंगा। अब यदि उपदेश न देता हूं तो झूंठा बनता हूं। सो इंद्र चाहे मार दे परन्तु मैं उपदेश अवश्य दूंगा। धन्य है ऋषिराज जिन्होंने प्राणों की तनिक भी पर्वाह नहीं की, अपने वचन को सच्चा किया। अश्विनी कुमार बोले हम संजीवनी विद्या जानते हैं इंद्र के मारने पर हम जिला देंगे। ऋषि ने उपदेश किया, उपदेश की समाप्ति पर इंद्रने वज्र से ऋषि का सिर धड़ से अलग कर दिया।

अश्विनी कुमारों ने तत्काल सिर धड़ पर रख कर अपनी विद्या के प्रभाव से पुनर्जीवित कर दिया। इस दृष्टांत से जाना गया कि चाहे सत्यवादी को कुछ कष्टों का सामना करना पड़े। परंतु अंतमें उसकी विजय होती है। जिस सत्य के धारण करने से मनुष्य कल्याण को प्राप्त होता है और जो सत्य स्वरूप भगवान है उनको अनंत बार नमस्कार है।

अथ नारायणोपनिषद्

पुरुष नारायण ने इच्छा की कि प्रजाओं की सृष्टि करूं। नारायण से प्राण उत्पन्न होते हैं। नारायण से मन, सब इंद्रियां, आकाश, वायु, तेज, जल और विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न होती है। नारायण से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। नारायण से रुद्र उत्पन्न होते हैं। नारायण से इंद्र उत्पन्न होते हैं। नारायण से प्रजापति उत्पन्न होते हैं। नारायण से बारह आदित्य रुद्र, वसु और सब छन्द उत्पन्न होते हैं। नारायण से प्रवृत्त होते हैं। नारायण में लीन होते हैं। यह ऋग्वेद का शिरोभाग (उपनिषद्) कहता है॥ १॥

नारायण नित्य है। ब्रह्मा नारायण और शिव भी नारायण है। इंद्र नारायण है। काल नारायण है। दिशाएं नारायण हैं। विदिशाएं नारायण हैं। ऊपर नारायण है। नीचे नारायण है। भीतर और बाहर नारायण है। नारायण ही यह सब है, जो भूत और भविष्यत है। निष्कलंक निरंजन निर्विकल्प, निराख्यात और शुद्ध देव नारायण ही है, दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार जानता है सो विष्णु ही होता है। यह यजुर्वेद का शिरोभाग (उपनिषद्) कहता है॥ २॥

ॐ इस अक्षर को पहले उच्चारण करे। बाद में 'नमः' का उच्चारण करे। इस के पश्चात् 'नारायणाय' ऐसा कहे। ॐ यह एक अक्षर है। नमः ये दो अक्षर हैं। नारायणाय ये पांच अक्षर हैं। यह नारायण का अष्टाक्षर पद है। जो नारायण के अष्टाक्षर पद का अध्ययन करता है, सो अनिन्दित होकर सब आयु पाता है। वह प्रजाओं का पति होता है, धन से पुष्ट होता है और गौओं का मालिक होता है। इस के अनन्तर मोक्ष पाता है। यह सामवेद का शिरोभाग (उपनिषद्) कहता है॥ ३॥

प्रत्यक आनन्द ब्रह्म पुरुष प्रणव [ओंकार] स्वरूप है। अकार, उकार और मकार (ये तीन अक्षर ॐ में हैं)। वह अनेक प्रकार का हुआ। वही यह ॐ है, जिस का उच्चारण करके योगी जन्म रूपी संसार के बन्धन से छूट जाता है। "ॐ नमो नारायणाय" इस मंत्र का उपासक वैकुण्ठलोक को जायगा। सो यह पुंडरीक विज्ञान घन है। इस लिये विद्युत के समान कान्ति वाला है। देवकी पुत्र ब्रह्मण्य है। मधुसूदन ब्रह्मण्य हैं। पुंडरीकाक्ष ब्रह्मण्य हैं। अच्युत ब्रह्मण्य हैं। एक नारायण ही सब भूतों में स्थित है। वे कारण पुरुष हैं किंतु उनका कोई कारण नहीं। वे परमब्रह्म हैं। यह अथर्व वेद का शिरोभाग कहता है॥ ४॥

इसे जो प्रातः पढ़ता है रात के पाप को नाश करता है। जो संध्या समय पढ़ता है वह दिन में किये हुए पाप का नाश करता है। सो, संध्या और प्रातः काल इसे पढ़ने वाला पापी भी पाप रहित हो जाता है। दुपहर को सूर्य्य के सामने मुख करके पढ़ने वाला पांच महापातकों और उपपातकों से छूट जाता

है। सब वेदों के पढने का पुण्य पाता है। नारायण से सायुज्य (मोक्ष) पाता है।

श्रीकृष्ण चरित्र

गतांक से आगे।

वत्सासुर, बकासुर और अघासुर वध

वृ

क्षों के टूटने का घोर शब्द सुन कर नंदरानी श्रीकृष्ण को देखने के लिए दौड़ीं, परंतु वहां पर न तो उलूखल ही मिला और न श्रीकृष्ण ही। तब तो वह घबरा कर, हा कृष्ण! हा कृष्ण!! कह कर चिल्लाने लगीं। नंदरानी के शब्दों को सुन कर नंदादिक सब गोप दौड़े आये उन्होंने वृक्षोंके पास उलूखल से बंधे हुए खेलते श्री कृष्ण को देख कर मन में आनंद माना। परंतु सब आश्चर्य करने लगे कि यह वृक्ष किस ने तोड़े हैं। ग्वाल बालों ने कहा कि यह सब श्रीकृष्ण की ही माया है। सब के सब श्रीकृष्ण के अद्भुत पराक्रम को देख कर आनंद मनाने लगे।

एक दिन उपनंदादि गोप कहने लगे कि इस व्रजभूमि में नित्य नये उत्पात होते रहते हैं। बालकों की घातिका पूतना से यह बालक जैसे तैसे बचा, एक समय शकट ही इस पर गिर पड़ा, एक बार बवूला ही आकाश में उड़ा लेगया, और अब वृक्षोंसे कठिनता से बचा है। यहां अधिक रहना अच्छा नहीं। अब हम को यह स्थान छोड़ देना ही उचित है। ऐसा विचार करके सब नंदादिक गोप वृंदावन की ओर चल दिए और वहां जाकर निवास करने लगे।

एक समय यमुना के तीर पर श्रीकृष्ण और बलराम बछड़े चराने गये। कंस ने सुना कि नंदादिक सब गोप गोकुल छोड़ कर वृन्दावन में जा बसे हैं। उसने वत्सासुर को बुला कर कहा कि मुझे नंद के पुत्र श्रीकृष्ण ने बहुत कष्ट दे रक्खा है। अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिस से उस बालक का शीघ्र वध हो। कंस की आज्ञा पाते ही वत्सासुर बछड़े का रूप बना कर वृन्दावन में जहां कृष्ण बलदेव गौ चरा रहे थे उन में जा मिला। श्यामसुंदर ने उस राक्षस को तुरंत पहचान लिया। उन्होंने बलदेव जी से कहा कि यह कोई राक्षस बछड़े का रूप बना कर हमारे वधार्थ कंस का भेजा हुवा यहां आया है। अतः तुम भी इस से सावधान रहना।

वत्सासुर श्रीकृष्ण के मारने की घात लगाता हुवा शनैः २ वृन्दावन बिहारी के निकट आ पहुंचा तब श्रीकृष्णचंद्र ने उस के दोनों पिछले पैर पकड़ कैथके वृक्ष की जड़ में ऐसा घुमा कर मारा कि वह तुरंत परम धाम को सिधार गया। यह देख कर सब बालक श्रीकृष्ण के पौरुष की प्रशंसा करने लगे और देवताओं ने प्रसन्न होकर आकाश से फूल बरसाये।

कंस वत्सासुर के मारे जाने का वृत्तांत सुनकर बहुत शोच में पड़ गया। उसने वत्सासुर के भाई बकासुर से श्रीकृष्ण को मार कर अपने भाई का बदला लेने को कहा। बकासुर बगुले का रूप धारण करके कालिन्दी के किनारे पर्वत के सदृश रूप बना कर बैठ गया। जब श्रीकृष्ण जी ग्वाल बालों सहित यमुना के किनारे गायों को जल पिलाने के लिये गए,

तो वह महा पराक्रमी दैत्य श्रीकृष्ण को निगल गया। यह देख कर सब ग्वाल बाल बहुत घबराये और विचार करने लगे कि अब घर जाकर क्या कहेंगे जैसे तैसे करके वह वसुदेव जी के पास आये और सब समाचार कह सुनाया। वसुदेव जी ने कहा कि डरो मत श्रीकृष्ण अभी उस दैत्य को मार कर आते होंगे। थोड़ी देर में जगत् गुरु, यशोदा के प्यारे और नंदके दुलारे श्रीकृष्ण ने बकासुर को भीतर ही भीतर जलाना आरम्भ किया। बकासुर इस कष्ट को सह नहीं सका। उसने तुरंत ही श्रीकृष्ण को उगल दिया। तब श्रीकृष्ण ने दोनों हाथों से उसकी चौंच पकड़ कर सब के देखते ही देखते परम-धाम को पहुंचा दिया। सब गोप प्रसन्न होकर कहने लगे कि इस बालक के ऊपर अनेकों आपत्तियां आईं। बड़े २ दैत्य नाना रूप धारण करके इस बालक को मारने आये परंतु परमेश्वर की दया से इसका कुछ भी नहीं कर सके। जैसे अग्नि में आकर पतंग आप ही आप गिर कर मर जाते हैं ऐसे ही स्वयं नष्ट हो गये।

एक दिन श्रीकृष्ण ने प्रातः काल सब ग्वाल बालों से कहा कि आज बन में ही भोजन करेंगे अतः सब के सब अपना २ भोजन संग ले चलो। तब सब ग्वाल बाल अपना २ भोजन लेकर गौओं के पीछे २ चल दिये। सब ग्वाल बन में जाकर अनेकों प्रकार की बाल लीला करने लगे। कोई बालक भौंरे के संग गाते थे, कोई कोकिला की वाणी में बोलते थे। इस प्रकार से नाना प्रकार की बाल लीला करते थे।

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या,
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण,
साकं विजहु कृत पुण्यपुंजाः॥
यत्पाद पांसुर्बहुजन्म कृच्छ्रतो
धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः,
किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम्

जो ब्रह्म ज्ञानियों को ब्रह्म रूप करके जानने में आते हैं, दास भाव के करने वाले भक्त जिनको परम दैवत रूप स्वामी मानते हैं, माया से मोहित पुरुष उनको मनुष्य का बालक मानते हैं। धन्य भाग्य है ग्वाल बालों का जो दिन रात भगवान वासुदेव के संग आहार विहार करते हैं। योगी जनों को भी अनेक जन्म महाकष्ट सह कर तप करने से जिनके चरणारविंद की धूरि मिलनी अत्यंत दुर्लभ है ऐसे श्रीकृष्ण चंद्र जिनके सम्मुख प्रत्यक्ष विराजमान रहैं उन व्रजवासियों की बड़ाई कहां तक करें।

जब सब ग्वाल बाल इस प्रकार से आपस में आनंद पूर्वक खेल रहे थे तब उन सबकी ऐसी सुख पूर्वक लीलाओं को न सह कर कंस का भेजा हुआ, पूतना और बकासुर का छोटा भाई अघासुर चार कोस लम्बा अजगर का रूप धारण कर गुफा के समान मुख फैला कर उन सब को निगल जाने की इच्छा से उस बन में बैठ गया। ग्वाल बालों ने समझा कि यह कोई वृन्दावन की शोभा को बढ़ाने वाली कन्दिरा है। अतः सब के सब खेलने के लिए उस कन्दिरा में घुस गए। भगवान् कृष्ण ने विचारा कि यह तो कोई सर्प रूप धारी दैत्य है और यह ग्वाल बाल इस को कन्दिरा समझ कर घुस गये हैं। अघासुर ने भी उन ग्वाल बालों को निगला नहीं क्योंकि उस ने समझा कि तेरी बहन और भाई को मारने वाला तो अभी बाहर ही है। अब भगवान्

श्रीकृष्ण अनाथ के समान दीन बालकों को अपने हाथ से छुटे हुए जान और अघासुर के हृदय में धास के सदृश देख आश्चर्य करने लगे और उस के मारने का विचार करने लगे। तब मित्रता के भाव को विचार कर भगवान श्रीकृष्णचंद्र भी उस के मुख में प्रवेश कर गए और उसके कण्ठ में प्रवेश करके अपने शरीर को बढाना आरम्भ किया। शरीर बढ़ते बढते इतना बढ़ गया कि उस राक्षस का गला फट गया, आंखें बाहर निकल आईं, इधर उधर चट पटाने लगा, देह में श्वांस रुक गया और प्राण देवता भी बाहर सटक गये। पश्चात् भगवान ने सब ग्वालबालों को मरा देख अपनी संजीवनी दृष्टि से अमृत की वर्षा करके पुनः जिला दिया और उनको साथ लेकर भगवान कृष्ण उस दैत्य के मुख से बाहर निकले। कालान्तर में उसका सूखा पिंजर व्रजवासियों के खेलने के काम आया।

ब्रह्मा जी का ग्वालबाल हरण।

आघासुर का बध करने के पीछे भगवान श्रीकृष्ण यमुना के किनारे एक अत्यंत रमणीक स्थान में आये। वहां सुंदर स्वच्छ बालू के कोमल बिछौने पर सबों ने बैठ कर भोजन करने की विचारी। भगवान श्री कृष्ण ने कहा कि बछड़ों को जल पिलाकर छोड़ दो। यह सुंदर २ कोमल घास चरते रहेंगे और हम सब भी भोजन कर लें। यह सुनकर बछड़ों को पानी पिला कर छोड़ दिया और सब सखा मण्डली भोजन करने बैठ गई। जब सब भोजन कर रहे थे। तो बछड़े हरी हरी घास चरते२ दृष्टि से ओझल हो गये। यह देखकर सब ग्वालबाल घबराये। भगवान ने कहा कि तुम सब आनन्द पूर्वक भोजन करते रहो मैं सब बछड़ों को ले आता हूं। इस प्रकार कह कर भगवान श्रीकृष्ण बछड़ों को ढूंढने निकले। वह सब स्थानों में बछड़ों को ढूंढते २ दूर निकल गये। अघासुर आदि के बध करने में श्रीकृष्ण की माया को देख कर उससे मोहित हुए ब्रह्मा ने वन में से बछड़ों को और यमुना के किनारे से बालकों को चुरा कर दूसरे स्थान में रख दिया। बछड़ों के न मिलने पर भगवान लौट कर यमुना के तीर पर आये तो क्या देखते हैं कि सखा मण्डली भी नहीं है। तब उन्होंने जान लिया कि यह सब काम ब्रह्मा का है। यह समझ कर उन्होंने अपनी माया से वैसे ही ग्वाल बाल और बछरू रच दिये अर्थात् आप ही बछड़े बन गये और आप ही ग्वाल बाल। इस प्रकार से एक वर्ष व्यतीत हो गया तब ब्रह्मा ने आकर देखा कि पहिले की भांति बछड़े और बालकों के सहित भगवान खेल कर रहे हैं। यह कौतुक देख ब्रह्मा जी अपने मन में विचार करने लगे कि, गोकुल के सब बछड़े और बालक तो मेरी माया से शयन कर रहे हैं यह और उन जैसे बालक और बछड़े कहां से आ गये! ब्रह्मा जी इस प्रकार मोहित हो कर विचार करने लगे कि यह बछड़े सत्य हैं या वह जो मैं हर कर ले गया हूं। यह तो दोनों एक जैसे दिखाई देते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा जी ही मोहित हो गए। पश्चात् वह भगवान श्रीकृष्ण की अद्भुत महिमा को देख कर सजल नेत्रों से उन के चरणों में गिर पड़े और इस प्रकार प्रार्थना करने लगे।

नौमीड्यतेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय,
गुंजावतंस परिपिच्छल सन्मुखाय।
वन्यस्रजेकवलवेत्र विषाण वेणु,
लक्ष्मश्रये मृदुपते पशुपांगजाय॥

हे भगवन्! श्याम घटा के समान तुम्हारा शरीर है, बिजली सम पीताम्बर धारण किये हुए हो, गुंजाओं के कर्ण भूषण, मयूर पिच्छ के मुकुट

से शोभायमान मस्तक, कण्ठ में वनमाला पहिरे, दही भात का ग्रास, वेत की छड़ी, बांसुरी के चिह्न से सुशोभित, अति सुंदर कोमल चरणारविंदों से विचरते हो। हे गोपाल! आप को बारम्बार मेरा नमस्कार हो।

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव,
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीय वार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।

हे अजित! आप किसी के जीतने में नहीं आते। परंतु जो पुरुष ज्ञान प्राप्त करने के परिश्रम को त्याग कर महात्मा पुरुषों के मुख से निकली हुई आप की कथा को श्रवण द्वारा पान करके मन से, वाणी से, देह से आप का अर्चन वंदन करके आपको जीतते हैं। उन लोगों को त्रिभुवन में कोई नहीं जीत सकता और वह लोग आपको अपने वशमें करलेते हैं।

श्रेयस्प्रतिं भक्तिमुदस्य ते विभो,
विक्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,
नान्यद्यथा स्थूल तुषावघातिनाम्॥

हे विभो! मुक्ति को देने वाली आप की भक्ति को त्याग कर जो लोग केवल ब्रह्म ज्ञानी होने के लिए अधिक क्लेश और खेद करते हैं उन लोगों को केवल क्लेश और खेद ही शेष रह जाता है जैसे जो मनुष्य थोथे तुषों को कूटता है उस को दुःख के सिवाय किसी प्रकार का भी अन्न नहीं मिलता।

पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिन-
स्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया,
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम्॥

हे व्यापक भूमन! इस संसार में पहिले बहुत से योगीश्वरों को जब योग से ज्ञान नहीं मिला तो अपनी सब क्रिया और कर्म आप को समर्पण करने से और कथा सुनने से भक्ति को प्राप्त हो उस से आत्म ज्ञान की प्राप्ति कर फिर अनायास ही आप के पद को प्राप्त हुए।

तथापि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते,
विबोद्धुमर्हत्यमलांतरात्मभिः।
अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो,
ह्यनन्य बोध्यात्मतया न चान्यथा॥

हे भूमन! आप के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का ज्ञान होना कठिन है और भक्ति से आप जानने में आते हैं तो भी निर्मल अंतःकरण वाले आत्मा का अंतःकरण के साक्षात्कार से, निर्विकारता से, अरूपता से, अनन्य बोध से कुछ२ आप की महिमा को जान सकते हैं। परंतु और किसी प्रकार से आप जानने में नहीं आते। हे गुणात्मन! आप गुणों के आधार हो। इस विश्व का मंगल करने के लिये आप ने इस संसार में अवतार लिया है। बहुतेरे भक्त जगत में ऐसे भी हैं जो रात दिन यही कहते रहते हैं, कि आप किस समय कृपा करेंगे। वह शरीर, मन, वाणी से आप को प्रणाम करते हैं। हे अच्युत! मैंने रजोगुण से उत्पन्न होने के कारण आप के स्वरूप को नहीं जाना, आप से भिन्न ही भगवान् को जाना। आप मेरे स्वामी हो मुझे अपना दास जान कर क्षमा कीजिए। हे नारायण! तुमही नारायण हो और तुम ही सम्पूर्ण देह धारियों की

आत्मा हो। हे प्रभु! मेरा अपराध क्षमा करना चाहिए।

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः,
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्र सुखो निरंजनः,
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः॥

हे प्रभु! आप सत्य स्वरूप हो, आप सबके कारण रूप हो, व्यापक होने से पुरुष कहलाते हो तुम सदा पूर्ण हो, नित्य सुख स्वरूप हो, अक्षर हो, अमृतहो आपका कभी विनाश नहीं होता, तुम अनंत और अद्वैत हो, आप उपाधि रहित असंग हो, निरंजन हो, नित्य मुक्त रूप हो और अमृत स्वरूप हो। हे अर्हन्! सब प्रकार के ऐश्वर्य से परिपूर्ण तुमको मेरा दण्डवत नमस्कार है।

इस प्रकार ब्रह्मा जी श्रीकृष्ण की स्तुति करके ब्रह्मलोक से ग्वाल बालों और बछरों को लाकर भगवान के अर्पण कर पुनः भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा लेकर ब्रह्म लोक में चले गये। भगवान श्रीकृष्ण की माया के प्रभाव से उन सब ग्वाल बालों को यह एक वर्ष एक पल के समान व्यतीत हुवा मालूम हुवा और वह इस भेद को नहीं समझ कर कहने लगे कि, भैया! तुम तो बहुत शीघ्र आये हमने तो अभी एक ग्रास भी नहीं खाया है। पश्चात् उन्हों ने आनंद पूर्वक भोजन किया और खेलते कूदते व्रज में लौट आये।

"भूमा"

धर्मोपदेश।

महाभारत के महायुद्ध के पश्चात् सब भाई बंधुओं तथा वीर सैनिकों के मारे जाने पर महाराज युधिष्ठिर राहु से ग्रसित सूर्य की भांति खिन्न से रहने लगे। धर्मपुत्र को इस प्रकार खिन्न मन जान वृष्णिवंश की टेक श्रीकृष्ण जी कहने लगे:-

वासना वाला यह सब संसार नाशवान् है, केवल निष्काम भाव से तथा निष्कपटता से ही आचरण करने पर मोक्ष प्राप्ति होती है। हे युधिष्ठिर! न तो तुम्हारे कर्म का ही नाश हुआ है और न तुम ने अपने शत्रुओं को ही जीता है क्योंकि तुम तो अपने शरीर में विद्यमान महाशत्रु को जानते ही नहीं। इसलिये मैं तुम से चिदात्मा का अहंकार के साथ जो युद्ध हुवा था वह तुमसे धर्मानुसार कहता हूं। हे राजन्! पहिले समय में यह सब स्थूल शरीर अहंकार से व्याप्त हो गया था। इस का स्वाभाविक विषय जो आत्मतत्व है वह उसमें से हर लिया गया था अर्थात् ऐसा अहंकार व्याप गया था कि उस आत्म तत्वका विस्मरण होगया था। इसलिए स्थूल शरीर को पीड़ा देने वाला अनात्म भूतही इसका विषय होगया था और उसमें से गंधरूप आत्मा खैंचलिया गया था। इसलिए आत्मा कुपित हो गया था फिर क्रोधमें भरे आत्मा ने अहंकारास्पद इंद्रियों के ऊपर अपना घोर वज्र छोड़ा। अर्थात् ज्ञान से विचार करना आरम्भ कर दिया। इस से उस ने तेजस्वी ज्ञान से अज्ञान रूप इंद्रिय बल को घायल कर दिया। तब अज्ञान ने

एक साथ यज्ञीयभोग में प्रवेश किया और उस का सार खैंच लिया। तब आत्मा ने उस पर पुनः ज्ञान रूपी वज्र का प्रहार किया। तब तो वह अज्ञान आत्मा में ही घुस गया। इस से आत्मा को अभिमान हुवा। तब "अहं ब्रह्मास्मि" के यथार्थ ज्ञान से आत्मा का अभिमान दूर किया। तदनंतर अज्ञान का ज्ञान से आत्मा ने नाश कर दिया।

हे महाराज! व्याधि दो प्रकार की होती हैं। एक शारीरिक और दूसरी मानसिक इन में से एक की उत्पत्ति दूसरी से होती है। एक के बिना दूसरी का जन्म नहीं होता। जो व्याधि शरीर में होती है उस को शारीरिक और जो मन में होती है उसको मानसिक कहते हैं। कफ, पित्त तथा वायु से यह तीन गुण शरीर में उत्पन्न होते हैं। जब यह सब गुण एक समान होते हैं तब लोग इस को आरोग्य के चिह्न कहते हैं। सत्व, रज और तम यह तीन गुण आत्मा के कहलाते हैं। जब यह तीन गुण समान रहते हैं तब आत्मा स्वस्थ्य रहता है, परंतु जब तीनों में एक का जोर बढ़ता है तब उस का उपाय करना पड़ता है। हर्ष से शोक दब जाता है और शोक से हर्ष में बाधा पड़ती है। कोई सुख में पड़ा हुवा दुःख का स्मरण करता है और कोई दुःख में पड़ा हुवा सुख का स्मरण करता है। अतः तुम तो दोनों प्रकार के दुःख से हीन हो जाओ। तुम दुःखी हो कर दुःख के स्मरण की और सुखी होकर सुखके स्मरण की इच्छा न करो। तुम तो इस दुःख के जंजाल से अन्य अकाम, अशोक ब्रह्म का स्मरण करो। मैं समझता हूं सभा में घसीट कर लाई गई एक वस्त्र वाली रजस्वला द्रौपदी को देख कर पांडवों ने आंख मींच ली थी, उस का स्मरण करना तुम नहीं चाहते। मैं समझता हूं तुम नगर में से बाहर निकाल दिये गये, केवल मृगचर्म ओढ कर रहे और घोर वनों में निवास किया उस का स्मरण करना तुम नहीं चाहते। मैं समझता हूं द्रोण और भीष्म के साथ तुम्हारा जो युद्ध हुवा था उस को तुम स्मरण करना नहीं चाहते। हे राजन! उन के साथ जो तुम्हारा युद्ध हुवा था वह तो हुवा ही था, परंतु अब तो तुम्हें अकेले को, जो युद्ध तुम्हारे अंतःकरण में होने लगा है उसमें मन के साथ लड़ना है। इस लिए अव्यक्त स्वरूप के परंपार पहुंचने के लिए योग से और अपने कर्मों से युद्ध में सन्मुख भिड़ना है! इस युद्ध में बाणों से, सेवकों से या भाइयों से कुछ काम नहीं पड़ेगा। यह जो युद्ध आरम्भ हुवा है इस में तो तुम्हें अकेले ही मन के साथ लड़ना है। सब प्राणी ऐसे ही आया और जाया करते हैं। इस बात को तुम निश्चय रूप से समझ कर तुम अपने पिता और पितामह के मार्ग में चलते हुए उचित रीति से राज्य का शासन करो।

हे राजन! बाहर के पदार्थों को त्याग देने से कुछ सिद्धि नहीं होती है और लिंग शरीर में उत्पन्न होने वाले कामादि पदार्थों को त्यागने से सिद्धि होती है और विवेक शून्य सूखे वैराग्य वाले को नहीं भी होती है। जिस में "मम" 'मेरा' लगा हुवा है उसकी मृत्यु होती है परंतु जिस में तीन अक्षरों का ज्ञान है अर्थात् 'न मम' मेरा नहीं यह है वह शाश्वत सनातन ब्रह्म को प्राप्त होता है। 'मम-मेरा' कहलाने वाली वस्तु का नाश हो जाता है और जिस में 'मेरा' भाव नहीं रहता वह अमर हो जाता है इसलिये हे राजन! ब्रह्म और मृत्यु इन दोनों की व्यवस्था आत्मा में ही है और यह दोनों अदृश्य रह कर निःसंदेह भूतों को लड़ाते हैं। सत् पदार्थ के अविनाशी पने का यदि निश्चय हो जाय तो प्राणियों के

शरीरों को काटने के काम को भी अहिंसा समझना चाहिये। स्थावर और जंगम पदार्थों से भरी हुई यह सब पृथ्वी मिल जाने पर जिस का उस में ममत्व नहीं होता है उस का वे पदार्थ कर ही क्या सकते हैं। वन में रहने वाले और वन में उत्पन्न हुए फल आदि से निर्वाह करने वाले मनुष्यों को यदि पदार्थों पर ममता हो तो निःसंदेह उस को मृत्यु के मुख में पड़ा हुवा ही समझो। तुम अपने बाहरी और भीतरी शत्रुओं के स्वरूप को देखो, जो इन शत्रुओं से उत्पन्न हुये कार्य को नहीं देखता है वह बड़े भारी भय से मुक्त हो जाता है। इस जगत् में जिस का आत्मा कामना वाला है लोग उस की प्रशंसा नहीं करते। इस लोक में कोई भी प्रवृत्ति निष्काम नहीं है, सब कामनायें मन की अङ्ग रूप हैं और पण्डित इस विषय में विचार करके कामनाओं का नाश करते हैं। योगी जन्म में बारम्बार किये हुए अभ्यास से योग को ही एक सार मार्ग विचार कर कामनाओं का नाश कर डालता है। दान, वेदों का अध्ययन, तप और कामनाओं वाले वैदिक कर्म, व्रत, यज्ञ, नियम और ध्यान योग इनमें से किसी कर्म को भी योगी कामना से आरम्भ नहीं करता है, क्योंकि वह जानता है कि, जिस जिस की वह कामना करता है वह धर्म नहीं है। वास्तविक धर्म तो वह है कि जिसकी मूल, इच्छाओं को अंकुश में रखने में है। अब मैं तुमको काम गीता सुनाता हूं।

काम गीता

काम ने कहा:-"कोई भी पुरुष उपाय किये बिना अर्थात् अहंपने के त्याग का अभ्यास किये बिना अहंभाव का नाश नहीं कर सकता। अहंभाव का नाश करने के लिये जितना बल चाहिये उसका विचार करके जो अहम्भाव को नाश करने का उद्योग करता है, उसके शास्त्र में भुजा में उस समय अहम्भाव प्रकट होता है। जो अनेकों प्रकार की दक्षिणाओं वाले यज्ञों से अहम्भाव का नाश करना चाहता है और समझता है कि मैं जङ्गमों में एक धर्मात्मा हो जाऊं उस समय उसके चित्त में फिर अहंभाव प्रकट होजाता है। जो कोई वेदोंके द्वारा और वेदान्त के साधनों द्वारा मेरे मारने का उद्योग करता है वह यह समझता है कि मैं स्थावरों में भूतात्मा हो जाऊं। उस समय फिर अहम्भाव प्रकट होजाता है। जो कोई सत्य पराक्रमी पुरुष धीरज से मेरे मारने का उद्योग करता है मैं उसका मानसिक विचार बन जाता हूं और वह मुझे पहचानता ही नहीं। जो कोई उत्तम व्रत वाला तप करके मुझे मारना चाहता है उसके मन में मैं तपभाव से प्रकट हो जाता हूं। जो कोई पण्डित मोक्ष पर श्रद्धा रख कर मुझे मारने का उद्योग करता है। उस मोक्ष पर प्रीति रखने वाले को देख कर मैं नाचता हूं और हंसता हूं कि सब भूतों में सनातन मैं एक अवध्य हूं।"

हे युधिष्ठिर! काम द्वारा कही गई इन सब बातों को विचार कर अनेक दक्षिणाओं वाले यज्ञों से उस काम को जीतने का धर्माचरण करो। इससे तुम्हारा यह काम सिद्ध हो जायगा। इस लिये हे युधिष्ठिर! तुम अश्वमेध आदि यज्ञ करो। इससे मरण को प्राप्त हुए बन्धुओं का बारम्बार स्मरण आने से होने वाला दुःख दूर होजायगा। हे पार्थ! जो रण में मारे गये हैं उनका फिर दर्शन होना कठिन है। इन यज्ञों के अनुष्ठान से इस लोक में तुम्हें कीर्ति मिलेगी और परलोक में उत्तम गति प्राप्त होगी।

आयुर्वेद शिक्षा ।

गतांक से आगे ॥

[ले० पं० रामरत्नलाल वैद्य शास्त्री]

मनुष्य को दन्तधावन (दतौन) मञ्जन आदि से दान्तों को शुद्ध (साफ कर गण्डूष (कुल्ले) करके मुखकी शुद्धि करना परमावश्यकीय है। क्यों कि यदि अच्छी प्रकार दान्त, जिह्वा, मुख, साफ न किये जावें तो, जितना मल प्रकृति द्वारा सांस से शरीर से बाहर निकाला हुवा दान्त, जिह्वा और मुख में संचित हो गया है वह भोजनादि के साथ फिर पेट के अन्दर जाकर मन्दाग्नि आदि अनेक बीमारियों को उत्पन्न कर देता है। धर्म शास्त्रादि में तथा आयुर्वेद में जितने भी शरीर शुद्धि के लिये नियम कहे हैं और जिनका करना धर्म माना है वे सब आरोग्यता जनक हैं, क्योंकि पूर्व समय में जितना धर्म तथा पुण्य के नाम पर कार्य करते थे उतना और किसी कार्य के लिये नहीं। धर्म के लिये प्राणों तक न्योछावर कर देते थे। अतः महर्षियों ने नित्य कर्म स्नान आदि को भी धर्म की गणना में लिख दिया कि स्नानादि कर्म करने से अमुक २ धर्म पुण्य होता है, जिससे इनको अवश्य करें। परंतु वास्तव में ऋषि, महर्षियोंके कथित दिनचर्या ऋतुचर्या आदि सब नियम आरोग्य जनक हैं आरोग्यता अमूल्य रत्न है यह बातें मनुष्यों के अन्तःकरण में अच्छी प्रकार धारण करने की आवश्यकता है। यदि हम आरोग्यता (तन्दुरुस्ती) का मूल्य और उसकी आश्यकता को समझ कर उसके अनुसार नियमों पर चलने का अभ्यास करें तो अपनी और अपने कुटुम्ब की एवं देशकी शारीरिक उन्नति के साथ २ सब प्रकार की उन्नति कर सक्ते हैं। यद्यपि आजकल तन्दुरुस्ती को सब कोई चाहते हैं और बहुत मनुष्य उस के उपायों को भी जानते हैं तथापि सांसारिक अनेक झंझटों के कारण आरोग्य जैसे अमूल्य पदार्थ को नष्ट करते हैं। यश, द्रव्य प्राप्त करने की अति तृष्णा, सुख भोग विलास प्राप्त करने में बढ़ी हुई स्वतंत्रता, भोजनादि की अनियमता बड़े नगरों में अधिक मनुष्यों के निवास से दुष्ट हुए स्थानों में निवास आदि, ये सम्पूर्ण आरोग्यता नाशक हैं। शरीर, वाक्य तथा असाध्य व्याधि ग्रस्त होजाने से, अनेक अत्यन्त परिश्रम तथा अधर्मादि से संचित द्रव्य तथा अन्य जितने सुख के साधन हैं सर्व व्यर्थ होजाते हैं। उसको संसार में फिर सच्चा सुख प्राप्त हो ही नहीं सक्ता। अतः मनुष्य को प्रथम ही आरोग्यता के नियमों पर चलना आवश्यकीय है।

दन्तधावन

मलश्रमहरं वृष्यं चक्षुष्यं रोग नाशकम् ।
चर्वयेदन्त काष्ठन्तु द्वादशाङ्गुलमायतम् ॥

दतौन करने से मल, श्रम, और रोग नष्ट होते हैं नेत्र की ज्योति और वीर्य बढ़ता है दतौन १२ अंगुल की लम्बी होनी चाहिये।

कनिष्ठिकाग्रवत् स्थूलं मृज्वग्रन्थितथाव्रणम् ।
एकैकं घर्षयेदन्तं मृदुना कूर्चकेन तु ॥

छोटी अंगुली के अगाड़ी पोरूए के समान मोटी दतौन हो। गांठ रहित और कोमल हो इसको चबाकर कूंचीसी बनाकर उससे धीरे २ एक एक दांत को घिस कर दान्तों को साफ करे।

तेनास्यरसवैरस्यं गंधा जिह्वास्य जागदाः ।
रुचिर्वैशद्यलघुता नश्यन्ति कदाचन ॥

दतौन के करने से मुखकी विरसता दुर्गंधि जीभ और दांतों के रोग नष्ट होते हैं रूचि बढ़ती है मुख साफ और हलका होजाता है।

दतौन करना निषेध।

दुर्बलोऽजीर्णयुक्तश्च हिक्का मूर्च्छामदान्वितः
शिरोरुजार्तस्तृषित श्रान्त क्षाम क्लमान्वितः।

दुर्बल, अजीर्णयुक्त और हिचकी वाला, मूर्च्छा रोग वाला, उन्मत्त, सिर में पीड़ा वाला, श्वासयुक्त अत्यन्त कृश इन मनुष्यों को दतौन करना निषेध है

अर्दितः कर्ण शूलीच नेत्र रोगीनवज्वरी।
वर्जयेद्दन्त काष्ठञ्च हृदामय युतोपि च॥

जिसे लकवा रोग हो, कान में पीड़ा हो, नत्ररोग वाला, नवीन ज्वर वाला, और जिसके हृदय में रोग हों इन मनुष्यों को दतौन नहीं करनी चाहिये। दांतों की शुद्धि के लिये मंजन भी उपकारी होता है।

अनुभूत मञ्जन प्रयोग नं० १

कत्था २ तो०, भुना हुआ नीला थोथा ३ मा० अकरकरा ६ मा०, माजूफल १ तो०, फिटकरी फुलाई हुई १ तो०, इन सब को रगड़ छान कर मंजन करे इसका रोजाना मंजन करने से दन्तपीड़ा, मसूढ़ों में से खून का निकलना आदि दन्तरोग नष्ट होते हैं।

मञ्जन नं० २

अकरकरा, मौलसिरी की छाल, माजूफल, भूनी हुई फिटकरी, लौंग, सेंधा नमक, सोंठ, मस्तंगी लोंघपठनी, कीकर की लोंग (कोंपल), सब समान भाग लेकर पीस छान के मञ्जन करे पूर्वोक्त गुण वाला है विशेष कर दान्तों को मजबूत करता है।

सुगन्धित मञ्जन प्रयोग नं० ३

चाक ५ औन्स, कियाजूट ३० बून्द, एसिड कारबोलिक ३० बून्द, टिंचरमर १ ड्राम, एसिड एसटोनिक २ ड्राम, कपूर ३० ग्रेन, पेपरमेन्ट ३ ग्रेन, पोटास क्लोरस २ ड्राम, आयल युकलिपटिस ३० बून्द एलम (फटकरी) १ ड्राम सबको मिला कर कांचकी डाट दार शीशी में रक्खे, थोड़ासा इस में से लेकर मंजन करे इससे दन्त पीड़ा आदि दन्त रोग नष्ट होकर दांत स्वच्छ होजाते हैं मुख में सुगंध आने लगती है।

दन्त पीड़ान्तक।

रोता आवे हंसता जावे। टिंचर ओपियम आधा ड्राम, टिंचर बेन जोनी एक ड्राम, क्रिया जूट आधा ड्राम, क्लोरो फार्म प्योर आधा ड्राम।

सबको एक साथ शीशी में मिलाकर रख दे जहां दान्त में दर्द हो वहां रूईके फोहे से लगावे परंतु सावधानी से लगावे होठ, जिह्वा आदि में न लगे दर्द में शीघ्र आराम हो जावेगा।

मुख सुवासित कर अवलेह नं० १

कुटकी ३ मा०, ताल मखाना ३ मा० इनका चूर्ण शहद १ तो० घृत ६ मा०, में मिलाकर प्रातः-काल चाट लेवे यह एक दिन की मात्रा है इसी प्रकार १ मास तक चाटने से मुखकी दुर्गन्ध नष्ट होकर मुखमें सुगंधि आने लगती है।

मुख सुवासितकर गुटी नं० २

नागर मोथा, इलायची के बीज, मुलहटी, कूट, दारुहल्दी सब समान भाग लेकर कपड़ छान कर शहद में मिला झाड़बेरी के समान गोली बना १, १ गोली मुख में रक्खे इससे मुख में कैसी ही दुर्गंध आती हो नष्ट हो जाती है।

प्रयोग नं० ३

छोटी हर्ड गोमूत्र में सातदिन तक भिगोवे गो मूत्र नित्य बदल दिया करे फिर खुरक कर कुटकी, सोंफ, छोटी पीपल, प्रत्येक १, १ तो० मिश्री ५ तो० सबको कूट छान कर ६, ६ मासे प्रातः काल सायं काल दोनों समय जलके साथ सेवन करने से दुर्गंध नष्ट होकर मुख में सुगंध आने लगती है।

अनुभूत मुख पाक चिकित्सा

चौकिया सुहागा फूलाया हुआ का कपर छान चूर्ण कर शहद में या ग्लेशरीन में मिला कर मुख के छालों पर लगा कर लार टपका देवे इससे शीघ्र ही छाले मिट जाते हैं।

बंश लोचन, कत्था, छोटी इलायची, सत गिलोय, शीतल चीनी, सब समान भाग लेकर कपर छान कर छालों पर बुरकाने से मुख के छालों में आराम होता है।

चमेली के पत्ते, गोंदनी की छाल, कचनार की छाल, कत्था, धनिया इन सबको समान भाग लेकर पानी में उबाल कर ठंडा होने पर कुल्ले करे इससे मुखपाक छाले आदि शान्त होते हैं।

भूनाहुवा तूतिया १ रत्ती सोना गेरू १ मासा इनको पीस आध सेर ठंडे पानी में डाल कुल्ले करने से मुख के छाले नष्ट होते हैं।

खांड आध सेर की शर्बत जैसी चासनी कर उसमें फूली हुई फिटकरी २॥ तो०, फूलाया हुआ सुहागा २॥ तो० इनको खूब बारीक पीस छान कर के रक्खे आवश्यकता होवे जब रूई के फोहे से मुख के छालों पर लगा कर लार टपका देने से छाले शांत होते हैं।

मानव धर्म सार।

एकादशोऽध्याय ॥

सर्वरत्नानि राजातु यथार्हं प्रतिपादयेत्।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैव दक्षिणाम् ।१।

राजा वेद के जानने वाले ब्राह्मणों को यथा योग्य सारे रत्न और यज्ञ के लिये दक्षिणा (धन) देवे ॥ १ ॥

धनानि तु यथा शक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥२।

वेदज्ञ पवित्र ब्राह्मणों को धन यथाशक्ति देवे, इससे मर कर स्वर्ग को प्राप्त होता है॥ २ ॥

भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्व देहिकम्।
तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवतस्य मृतस्य च ॥ ३ ॥

कुटुम्बियों को तंग करके जो कुछ परलोक के लिये करता है, वह उसके लिये दुःख परिणाम वाला होता है जीते हुवे भी और मरकर भी ॥ ३ ॥

यो साधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यश्चः प्रयच्छति।
स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ ।४॥

जो दुष्टों से धन लेकर भलों को देता है, वह अपने आप को नौका बना कर उन दोनों को तारता है।॰ ४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते।
तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥

ब्राह्मण मर्यादा बनाने वाला, शासन करने वाला (अधर्म का दंड प्रायश्चित देने वाला) आचार्य

और सबका हितैषी कहा है, उसके लिये अनिष्ट वचन न कहे, न कठोर वचन कहे ॥ ५॥

अन्न हीनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनस्तु ऋत्विजः ।
दीक्षितं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥

अन्न हीन, मन्त्र हीन, और दक्षिणा से हीन यज्ञ राष्ट्र को नष्ट कर देता है। अतः यज्ञ के समान शत्रु नहीं है ॥ ६ ॥

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।
कामकारकृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ७॥

बुद्धिमान् पुरुष बिना इच्छा (बिना मर्जी) से किये पाप से प्रायश्चित कहते हैं, दूसरे आचार्य इच्छा करके किये में भी कहते हैं, क्योंकि श्रुति में देखते हैं ॥ ७ ॥

ब्रह्म हत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ८

चोरी (ब्राह्मण के सुवर्ण की), गुरु स्त्री के पास जाना, इन (कर्मों) को महापातक कहा है, और उन (महापातकियों) के साथ संसर्ग भी (पांचवां महापातक) है ॥ ८ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत्
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च ॥९

गो ब्राह्मण के लिये झट प्राणों का त्याग करें, गौ और ब्राह्मण की रक्षा करने वाला ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ९ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ।
तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति ॥

क्योंकि ब्राह्मण धर्म की जड़ है और क्षत्रिय अग्र है, इसलिये उनके समागम में अपना पाप प्रसिद्ध करके शुद्ध होना है ॥ १० ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मण राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्

सुरा अन्नों की मल है, और पाप मल कहलाता है, इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य सुरा न पीयें ॥ ११ ॥

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ।

द्विज किसी पुरुष से, वा अपनी स्त्री से छकड़े में, पानी में, वा दिन में मैथुन करे, तो वस्त्रों समेत स्नान करे ॥ १२ ॥

ख्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्ययनेन च ।
पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ १३

प्रकट करने से, पश्चात्ताप से, तप से, वेदाध्ययन से, तथा आपत्काल में, दान द्वारा पाप करने वाला पाप से छूटता है ॥ १३ ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।
नैवं कुर्यां पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सः ।१४

पाप करके पश्चात्ताप करने से उस पाप से छूटता है। फिर ऐसा नहीं करूंगा ऐसे दृढ़ संकल्प द्वारा निवृत्ति से वह पवित्र हो जाता है ॥ १४ ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ।
तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं च समाचरेत् ॥

भूलसे वा जानकर निन्दित कर्म करके उससे छूटना चाहता हुवा दुबारा न करे ॥ १५ ॥

तपो मूलमिदं सर्वं दैवमानुषिकं सुखम् ।
तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥

सारा सुख जो देवताओं और मनुष्यों का है, वेद के द्रष्टा ऋषि बतलाते हैं, इसका आदि तप, मध्य तप और अंत तप है ॥ १६ ॥

ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ।
वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥

ब्रह्मण का तप ज्ञान है, क्षत्रिय का तप रक्षा करना है, वैश्य का तप व्यापार है और शूद्र का तप सेवा है ॥ १७ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १८

अपने ऊपर वश रखने वाले, फल फूल और वायु के खाने वाले ऋषि केवल तप से ही चराचर समेत त्रिलोकी को देखते हैं ॥ १८ ॥

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः
तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ।१९

औषध, आरोग्यता, विद्या और अनेक प्रकार की दैवीस्थिति, तप से प्राप्त होती हैं क्योंकि तप इन सबका साधन है ॥ १९ ॥

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

जिससे पार होना कठिन है वह सब तप से हो जाता है, तप की शक्ति को कोई नहीं उलांघ सक्ता ॥

कीटाश्चाहि पतंगाश्च पशवश्च वयांसि च ।
स्थावराणि च भूतानि दिवं यान्ति तपो बलात्

कीड़े, पतंग, सांप, पशु पक्षी और स्थावर जीव (वृक्ष वेलादि) तप के बल से स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

यत्किंचिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्जनाः ।
तत्सर्वं निर्दहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ २२।

जो कुछ पाप मन वाणी वा शरीर से मनुष्य करते हैं, उस सारे पाप को तपोधनी पुरुष तप से ही जल्दी जला देते हैं ॥ २२ ॥

प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः ।
तथैव वेदान्ऋषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ २३ ॥

तप से ही प्रजापति प्रभु ने इस शास्त्र को रचा, वैसे ही ऋषि तप से ही वेदों को प्राप्त हुए २३

यथैधस्तेजसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ।
तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदवित् २४

जैसे अग्नि प्राप्त हुई लकड़ी को अपने तेज से झट दग्ध कर देता है, वैसे ही वेदवेत्ता पुरुष ज्ञान की अग्नि से सारे पापों को दग्ध कर देता है ॥२४॥

ब्रह्मचर्यं जपो होमः काले शुद्धाल्प भोजनम् ।
अरागद्वेष लोभश्च तप उक्तं स्वयंभुवा ॥ २५

ब्रह्मचर्य, जप, होम, समय पर थोड़ा और अल्प भोजन राग, द्वेष और लोभ रहित होना यह मनु ने तप के लक्षण कहे हैं ॥ २५ ॥

हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः ॥
ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किंचनः २६

इन तीनों लोकों को भी मारकर, और जहां तहां से भी खाता हुआ ऋग्वेद को धारण करता हुआ ब्राह्मणादि किसी पाप को नहीं प्राप्त होता ।२६।

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते २७

ऋचाओं की संहिता वा यजुषों की संहिता, वा उपनिषद् समेत सामों की संहिता को एकाग्र हो तीन बार अभ्यास करके सब पापों से छूट जाता है।

— —

ऋषियों के आश्रम।

(ले० पं० जयराम सनातन देहली)

चीन भारतमें ऋषियोंके आश्रमऋषियों के स्थान थे, शक्ति के केन्द्र थे, धार्मिक छावनियां थीं, आर्य जाति के आर्य जीवन लीला के सूत्रधार थे, धार्मिक सामाजिक राजनैतिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने वाले थे, और देशकी अवस्थाओं के परिवर्तन करने में बिजली के बटन थे। वास्तव में ऋषियों के आश्रम प्राचीन भारत का सर्वस्व थे। जब तक ये रहे देश ऊंचा रहा, जाति ठीक रही, धर्म का बोल बाला रहा और इनकी कमी के साथ २ देश भी गिरता चला गया।

सृष्टि के आरम्भ में प्रवृत्ति जीवन में आश्रम ही कुटि रूप में थे। सेवक शिष्य जाति और देश द्वारा अपनाये जाने पर, आर्य सभ्यता का आरंभ हुवा। हिन्दू तहजीब या आर्य संस्कृति का अनुसरणीय महान आदर्श संसार में स्थापित हुवा, और सनातन धर्म का वास्तविक स्वरूप दृष्टि गोचर होने लगा। प्राचीन काल के प्रत्येक चक्रवर्ति राजा का इतिहास आश्रमों के वर्णन से ओत प्रोत है। हरएक प्रकार के जीवन में आश्रम एक आवश्यकीय अंग थे। प्रथम तो आदि सप्त ऋषि आश्रमों को चिरस्थायी आसन बनाकर सदा के वास्ते एक सूत्र छोड़ गये। महाराज दशरथ, रघु, दलीप, महाराजा भरत भगवान परशुरामजी का आश्रमोंसे घनिष्ट संबंध था। रामचन्द्र जी का वन गमन क्या है मानों इतिहासकार ने आश्रमों का दिग्दर्शन कराया है। ऐसेही रघुवंश और महाभारत आदि ग्रन्थों में आश्रमों का स्थान स्थान पर वर्णन मिलता है। महर्षि जमदग्नि जी के सरस्वति आश्रम के पवित्र जल वायु में ही मानुषी शरीर में प्रथम शस्त्रधारी अवतार भगवान् परशुराम जी का जन्म हुवा था। जमदग्नि जी का सरस्वति आश्रम ही उनकी बाल लीला का पवित्र स्थान था। ऐसेही वशिष्ट, भरद्वाज, विश्वामित्र, कपिल आदि कनेक महर्षियों के आश्रमों का वर्णन पुराणों में मिलता है। कौरव कुलके प्रवर्तक महाराज भरतका जन्म भी आश्रम में ही हुवा था, आश्रमों के जलवायु ने धर्मात्मा ऋषि सच्चे ब्राह्मण, वीर चक्रवर्ति राजा, पैदा किये। आश्रमों ने ही उन में सच्चे जीवन का संचार किया, आश्रमों ने ही उनके संसारी उद्देश्यों में सहायता दी, आश्रमों में उनके मनोरथ पूर्ण हुए और आश्रमों ने ही उनके चरित्रों द्वारा भारतवर्ष के इतिहास को उज्वल किया।

जब रामचन्द्र जी बन को गये तो कई आश्रमों के दर्शन किये। महर्षि अत्रि और अनुसूया द्वारा सतीत्व धर्म का महान् और गम्भीर उपदेश पूर्ण सती सीता को हुवा। महर्षि भरद्वाज जी का आश्रम एक विशाल विद्यापीठ था, विश्वविद्यालय था, आधुनिक विश्वविद्यालयों (Universities) के लिये एक महान् आदर्श था। दस हजार विद्यार्थी वहां पर शिक्षा पाते थे, उनके वस्त्र भोजन रहन सहन का वहीं पर प्रबन्ध था। परा, अपरा, वेद, पुराण, शास्त्र योग, इतिहास, भूगोल, व्यापार, राजनीति, राजशासन, इत्यादि कौनसी ऐसी विद्या थी जिसकी वहां पर शिक्षा न मिलती हो। ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य की ओर भी विशेष ध्यान था और उनमें त्रुटि मृत्यु समझी जाती थी। इस बात को आज कलके विद्वान् लोगभी भली भांति जानते हैं कि, हमारे प्राचीन

विद्यालय, मकानों की दीवारों से बन्द नहीं होते थे, अपितु खुले मैदानों में वृक्षों की छाया के नीचे खुली हवा में होते थे, भूमि पर हरी २ घास पर राजा और रंक सब एक रूप में ही शिक्षा पाते थे और अपनी २ पूर्णता को प्राप्त कर अपने २ यथोचित संसारी आसन पर जाते थे। कृष्ण और सुदामा का प्रेम आश्रम में विद्यार्थी काल का था। द्रुपद और द्रोण का परिचय भी आश्रम में बालापन के समय का था। हनुमान और नारान्तक की अनबन भी ऐसे ही समय की थी। रामचन्द्र और लक्ष्मण ने आश्रम में अस्त्र शिक्षा पाते समय ही विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी और ताड़का को मारा था।

अगस्त ऋषि का आश्रम असाधारण आश्रम था। वन को जाते समय रामचन्द्र जी बहुत समय तक उनके आश्रम में रहे हैं। लंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् महाप्रतापी रावण के पुष्पक नामी विमान में (Aeroplane) में बैठ हुए आकाश मार्ग से आते हुवे रामचन्द्र लक्ष्मण को बताते हैं कि, वह जो कई मीलतक पीपल ही पीपल के वृक्ष दिखाई देते हैं वह है अगस्त ऋषि का आश्रम। हमें अपने हवाई जहाज को वहीं पर उतारना है आश्रमों में वृक्षों की अधिकता एक आवश्यकीय बात है। पीपल, बड़, गूलर, नीम, फलदार वृक्ष, पत्र, पुष्प, वाटिका, और जड़ी बूटियां विशेष रूप से आश्रमों की शोभा हैं। "वृक्षों की उपादेयता" नामक एक लेख यद्यपि "भक्ति" के पाठक किसी गतांक में प्राप्त कर चुके हैं तदपि वृक्षों की उपयोगिता भौतिक, तथा धार्मिक, और दैविक, दृष्टि से इनकी आवश्यकता पर तथा जड़ी बूटियां, फल फूल, पवित्र वायु मंडल ऋषियों का योगी जीवन और उनका आशीर्वाद, आश्रमों के जलाशयों (तालाबों) के जल और वायु को उत्तम पवित्र वास्तव में स्वास्थ्य और अनेक दुसाध्य विकट रोगों को शान्ति देने वाला बनाने में कैसे सहायता देते थे इस पर एक बड़े लेख की आवश्यकता है। जो फिर कभी भगवान् की कृपा से पाठकों की सेवा में आयेगा।

हां इतना अवश्य है कि इन सब बातों से आश्रम बहुत ही रमणीक स्थान होते थे * धार्मिक और राष्ट्रीय लीला के मुख्य स्थल थे और सब प्रकार के अतिथियों के लिये भी यथोचित स्थान थे। सर्व साधारण के लिये आकाश मार्ग से आने वालों के लिये जो स्थान नियत था, वहीं पर रामचन्द्र जी ने अपना विमान उतारा ऋषियों के दर्शन किये, और फिर आकाश मार्ग से ही अयोध्या का रास्ता लिया। प्रत्येक जीव के लिये उचित स्थान की आवश्यकता है। ऋषियों और देवताओं के लिये, आर्य जाति को इसके अपने आदर्श पर स्थित रखने के लिये, आर्य सभ्यता आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये, सनातन हिन्दू धर्म की सनातन पूर्णता और सार्वभौमिकता दर्शाने के लिये आश्रमों की आवश्यकता है। यह आवश्यकतायें जिस समय में पूर्ण थीं देश उन्नत था।

अगस्त ऋषि के आश्रम के एक विभाग में, जिसमें केवल देवताओं आदि के विमानों के उतरने ठैरने तथा यथोचित सत्कार सम्मान का प्रबन्ध था रामचन्द्र जी के पुष्पक विमान को लंका और अयोध्या के रास्ते में जंकशन का काम दिया। रामायण में लिखा है कि अगस्त ऋषि के आश्रम में चालीस देवताओं की वेदियां बनी हुई थीं, और वह ४० देवता

---

*इनका दिग्दर्शन मात्र आप श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी में पधार कर देखें।

अर्थात् दूसरे लोकों के चक्रवर्त्ति राजा, अपने २ देव-लोकों के एक मात्र स्वतंत्र शासन कर्ता अगस्त ऋषि के आश्रम में आते जाते थे। यह एक साधारण सी बात है परन्तु है समझने की, उच्च कोटि के महात्मा गणों का, योगियों का, ऋषियों का निवास स्थान बड़े २ नगरों के तंग गली कूचों में नहीं होता है, उनके लिये भी उचित और योग्य स्थान की आवश्यकता है। जब भला मनुष्यों की यह बात है तो ऋषियों और देवताओं की तो गणनाही क्या?

प्राचीन इतिहास में स्थान २ पर देवताओं का आना जाना लिखा है ये कोई कल्पित मानसिक देवता नहीं ये छ मन्तर से पैदा नहीं होते थे। वह थे और अब भी हैं। उनमें जाने के लिये सूर्यलोक जंकशन है अग्निमय लोक होने के कारण जीवित देहधारी मनुष्य नहीं जासकते, यथा त्रिशंकू को इन्द्र ने स्वर्गमें आने से रोक दिया, मर कर जा सकते हैं, आत्मा जा सकता है क्योंकि आत्मा को अग्नि जला नहीं सकती।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

अथवा पूर्ण पदार्थ ज्ञान तथा रसायन ज्ञान की उन्नति होने पर अग्नि में न जलने वाले (fire-proof विमानों की सहायता से तथा वायु का आश्रय न रखने वाले (Air-proof) विमानों की सहायता से मर्यादा को उल्लंघन कर आसुरी सम्प्रदाय वाले इस देह से भी जा सकते हैं जैसे कि अंगरेज लोग आज कल उद्योग कर रहे हैं। पर अभी इनके विमान इतने योग्य और प्रबल नहीं हैं। अभी साइंस की पूर्ण उन्नति नहीं है। परन्तु धर्म का आश्रय छोड़ कर उन्नति पतन का कारण होती है। पुराणों में लिखा है कि प्राचीन काल में राक्षसों ने पूर्ण उन्नति की। पृथ्विलोक पर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त करके देवताओं के विद्यमान देवलोकों पर हाथ साफ करना आरंभ किया। प्रबल विमानों द्वारा सूर्य को भेदन करके इंद्र लोक पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त कर स्वर्ग लोक से इंद्र को निकाल बाहर किया। परन्तु धर्म से विमुख उन्नति में पतन ही होता है। इंद्र ने तब दूसरे देवलोकों की सहायता से जिन का संगठन अभेद्य है अनादि काल से अटूट है उन राक्षसों पर जो स्वर्ग पर आधिपत्य जमाये बैठे थे फिर आक्रमण किया और उनको और उनके विमानों को चूर चूर कर पुनः भूलोक पर ही डाल दिया इत्यादि अनेक उदाहरण मिलते हैं। योग दर्शन के सूत्रः-

"भुवन ज्ञानं सूर्य संयमात्"

पर भाष्य करते हुए व्यास जी ने कुछ विश्व भूगोल का परिचय देते हुए बताया है कि किस प्रकार विश्व में अनेक लोक हैं, उनकी प्रजा कैसी है, कौन लोग वहां निवास करते हैं, क्या उनकी सभ्यता है? इत्यादि। जैसे हमारी जमीन भूमंडल एक लोक है ऐसे ही और बहुत से लोक हैं जिन में से कुछ तारागण दिखाई देते हैं। इस बात को भूगोल विज्ञ भी अच्छी तरह जानते हैं। जब इस भूलोक में चक्रवर्त्ति धार्मिक राजा होते थे, देवताओं के आदर सत्कार सम्मान का पूरा प्रबन्ध था तो देवलोकों से देवता लोग अपने २ विमानों में आजाया करते थे। द्रौपदी को विवाह समस्या को हल करने के लिये इसी तरह उन्हें बुलाया गया था और वह आये थे। प्रत्येक अवतार के जन्म के समय, अथवा किसी अलौकिक अद्भुत धर्म के कार्य के समय भी वह आजाया करते थे और सुमन वृष्टि आदि करते थे। भगवान परशुराम

के जन्म के समय, भगवान रामचन्द्र के जन्म के समय, बानर सेना को पुनर्जीवित करने के लिये अमृत वर्षा करने के समय, भगवान कृष्णचंद्र के जन्म के समय तथा पृथ्वि के भार उतारने के लिये और अनेक धार्मिक महान कार्यों के करते समय देवतों का आना जाना, पुष्प वर्षा करना, ऋषियों के साथ दर्शन मेले शास्त्र इतिहास द्वारा भली प्रकार प्रमाणित हैं।

अगस्त ऋषि के आश्रम में इसी प्रकार से ४० देवताओं के स्वागत का पूर्ण प्रबन्ध था। अलग वेदियां बनी हुई थीं। जिस समय रामचंद्र जी वहां आये उसके कुछ समय पहले इंद्र देवता वहा आये थे और उन्होंने अगस्त ऋषि को एक दैवी कवच और अद्भुत तलवार दी थी जो अगस्त जी ने रामचंद्र को दी। उनके आश्रम में रामचंद्र जी बहुत समय तक ठैरे और वहीं पर देवादि देव महादेव की उपासना की थी। महादेव जी प्रत्यक्ष हुए और प्रसन्न होकर कहा"-

"इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्वह।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि॥"

ऐसे ही और बहुत से अस्त्र शस्त्र अगस्त ऋषि के आश्रम में रामचन्द्र जी को प्राप्त हुवे। इसी प्रकार हर एक महान कार्य में ऋषियों के आश्रम महान सहायक होते थे, राजा और रंक सभी आश्रमों के तन मन धन से सेवक सहायक तथा संरक्षक होते थे। तभी तो आश्रमों में दस २ हजार विद्यार्थियों के वस्त्र भोजन, रहन सहन, पुस्तक शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध था। अतिथि साधु महात्मा ऋषियों देवताओं आदि का आतिथ्य सत्कार सम्मान इसके अतिरिक्त था यदि पूर्ण रूप से उस काल के आश्रमों तथा उन के उद्देश्य आदि का क्रम बद्ध वर्णन किया जाय तो एक बड़ी ग्रन्थ रचना हो और मनुष्य समाज आश्रमों के महत्व, उपयोगिता, तथा आवश्यकता से परिचित हो। भारतकी उन्नति के समय में आश्रमों की बाहुल्यता थी, देश देशों में जनता में उनका प्रचार था, प्रेम था, सहानुभूति थी, उनके द्वारा धार्मिक जीवन का संचार होता था और देश उन्नत था।

अपूर्ण

हमारा वृक्षों से महान् उपकार।

[ले० श्री० पं० रघुनाथ स्वामी नरेला]

जहां सुंदर नदी रम्य सरोवर बन उपवन प्राकृतिक या स्वयं आरोपित किये हुए होते हैं, उन उन स्थानों पर ऋषि, महर्षि, देवता गण मनुष्य, पशु पक्षी निवास करने के लिए स्वयं बड़े उत्सुक रहते हैं। जैसे वाराही संहिता में कहा भी है:-

सलिलोद्यान युक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च।
स्थानेष्वेतेषु सान्निध्य मुप गच्छन्ति देवताः॥

इन आश्रमों का प्रभाव ऐसा ही है। ऐसे रमणीक स्थानों पर बड़े २ ब्रह्मर्षि और राजर्षि ब्रह्मवेत्ता निवास करते थे। उन्हीं की आज्ञानुसार देश की मर्यादा बंधती थी।

यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथा।

जैसे वे वर्तें इसी मर्यादा अनुसार सब वर्णाश्रम स्वधर्मानुसार वर्तते थे। इसी से संसार का

कल्याण होता था। इसी भाव को लक्ष्य कर भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा आदि की स्थापना हुई है, इस में वृक्षारोपण प्रचार भी उस का एक अंग है। परंतु मातृ भक्ति, पितृ भक्ति, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, प्रेम भक्ति, राज भक्ति भी इस के अंग हैं। इन ही विचारों के प्रकट करने के लिए 'भक्ति का भाव प्रादुर्भूत हुआ है। वृक्षों के संबंध में श्रीमद्भागवत महा पुराण को वर्णन करते हुए शुकदेव जी परम योगी कहते हैं:-

अहो एषां वरं जन्म सर्व प्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः॥
यत्र पुष्प फलच्छाया मूल वल्कल दारुभिः।
गन्ध निर्यास भस्मास्थि तान्वै कामात् वितन्वते
एतावज्जन्म साफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा॥ ३

अहो! इन का जन्म अत्यंत श्रेष्ठ है क्योंकि यही तो सर्व प्राणियों के जीवन स्वरूप हैं। जैसे सज्जन पुरुषों के आश्रमों पर जाने से वे याचक की मनोकामना पूरी कर देते हैं इसी भांति ये वृक्ष भी पत्र, पुष्प फल, छाया, मूल, वल्कल, काष्ठ सुगंधि अंत में भस्मादि बन कर भी हमारी मनोकामना पूर्ण करते हैं। ऐसे ही परमार्थियों का सफल जन्म है जो अपने तन, मन, धन, प्राण सर्वस्व को सर्व के लिए अर्पण कर देते हैं। इन का नाम तरु भी है।

'तारयतीति तरुः'

जो कोई उत्तम २ बड़ पीपल निम्बादि वृक्ष आरोपण करते हैं वे लोग इनके पुण्य के प्रताप से संसार सागर से तर जाते हैं इसीलिये इनको तरु कहते हैं। धर्म शास्त्र में कहा है:-

इष्टा पूर्तं च कर्तव्यं ब्राह्मणे नैव यत्नतः।
इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तं मोक्षोऽभिधीयते॥

इष्ट यज्ञादि से स्वर्ग सुख मिलता है, वापी कूप तडाग देव स्थान वृक्षारोपण आदि सत्कर्मों से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है, इसी कारण इन २० लक्ष योनि उद्भिज सृष्टि के उपकार के मूल कारणों को महर्षि जानकर यह उपदेश कर गए हैं कि:-

वृक्षारोपणं सर्वैरवश्यमेव करणीयम्।
'वटो मोक्ष प्रदायकः।

अर्थात वृक्ष वनस्पति आदि का लगाना भी प्रत्येक मानव का परम कर्तव्य है।

एक वड़ को लगाने से ही मोक्ष प्राप्ति का फल प्राप्त हो जाता है, ऐसा सहस्रों वर्ष का सदावर्त अनंत अक्षय महापुण्य का फल देने वाला बन जाता है और निज शाखाओं के द्वारा परोपकार द्वारा नम्रता की सीख सब को सिखाता है।

मनो विज्ञान के ज्ञाताओं का कथन है कि समीपवर्ती वस्तुओं का, मनुष्य के मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। यह बात प्रसिद्ध है कि मनुष्य जैसे संग में बैठता है वैसाही उनका स्वभाव भी बन जाता है, परंतु साधारण मनुष्य इस बात की ओर ध्यान नहीं देते, कि सत्संग के अतिरिक्त स्थानीय प्रभाव से भी मनुष्य वंचित नहीं है स्थानीय प्रभाव की ओर पूर्णतया ध्यान न देने के कारण वह उत्तम स्थानों से पूर्णतया लाभ नहीं उठाते। स्थानोंका सुंदर बनाना बहुत कुछ मनुष्य के अपने ही हाथ में है। सुंदर वृक्षों के लगने से स्थानों की शोभा अधिक हो जाती है, निकटवर्ती वायु शुद्ध हो जाती है, ऐसे स्थानों पर मनुष्य के चित्त की वृत्तियें सुगमता से एकाग्र हो सकती हैं। अतएव परीक्षा के दिनों में जब छात्रों

को अधिक परिश्रम करना पड़ता है तो वह बागों में जाकर वृक्षों के नीचे अपना पाठ अध्ययन किया करते हैं। यदि उन विद्यार्थियों से पूछो तो वह यही कारण बतायेंगे कि बागों में ध्यान अच्छे प्रकार से जमता है, भगवद्भक्ति के लिए भी चित्त का एकाग्र होना परमावश्यक है, अतएव प्राचीन समय में ऋषिमुनि निज आश्रमों में बहुत वृक्ष लगाते थे। बड़े २ नगरों में जहां वृक्षाभाव होता है वहां की वायु भ्रष्ट हो जाती है, जिस से नगर निवासी जनों के स्वास्थ्य में बड़ी हानि पहुंचती है। वृक्षाभाव से प्राकृतिक सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है। इसी कारण मनुष्यों के मन अशांत रहते हैं, बड़े २ नगर निवासी धनाढ्य सर्व सुख सामग्री होने पर भी दुर्बल और अशांत चित्त रहते हैं। इन के अतिरिक्त ग्राम वासी बलवान् और शांत स्वभाव के होते हैं।

मनुष्य स्वभाव से ही सौंदर्य के उपासक हैं। सुंदर वस्तुओंको देखकर उनका चित्त प्रसन्न होजाता है, जिस प्रकार शारीरिक क्षुधा पिपासा की तृप्ति के लिए अन्न-जल और वायु की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार सुंदर वस्तुओं को देखने से तथा मधुर रागों के श्रवण करने से ही मानसिक क्षुधा की तृप्ति होती है। वर्तमान समय में वृक्षों के कट जाने से प्राकृतिक सौंदर्य नष्ट हो जाता है, सुंदर पुष्पों से प्रफुल्लित हरे भरे वृक्षों को न देख कर तथा उन पर विश्राम करने वाले नाना चंचल पक्षियों के मधुर रागों को न सुनकर वह अपनी मासिक क्षुधा तृप्त नहीं कर सकते, अतएव वह अन्य कुमार्गों के उपासक बन जाते हैं यही कारण है कि भारत वर्ष के रमणीक ग्रामों के अतिरिक्त पश्चिमी देशों के महान् नगरों में जहां जन संख्या अधिक होती है और वृक्षादि कम, मनुष्य अधिक कुमार्ग गामी होते हैं।

यदि हम महान नगरों से इन त्रुटियों को दूर करना चाहें तो हमें वहां पर वृक्षों के बड़े २ उपवन छोड़ देने उचित हैं। जहां मनुष्य दिन भर परिश्रम से पक कर घड़ी दो घड़ी ईश्वरोपासना कर सकें।

बहुधा लोग कहा करते हैं कि हमारा भजन पूजा में नहीं मन लगता इस का एक कारण यह भी है कि वृक्षाभाव के कारण वायु पवित्र नहीं होती।

अशुद्ध वायु के श्वास प्रश्वाश से रक्त विष युक्त होकर चित्त को अशांत कर देता है। इसी प्रकार रक्त में विष वृद्धि होने से बहुत प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे मनुष्य की आयु न्यून हो जाती है।

वर्तमान समय के विख्यात कविवर श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी 'साधन' नामी पुस्तक में लिखते हैं कि भारत वर्ष की प्राचीन सभ्यता तथा युरोप की अर्वाचीन सभ्यता में बड़ा भारी अन्तर यही है कि भारतीय प्राचीन सभ्यता वृक्षों की साया में वनों के अंदर पली थी और युरोप की वर्तमान सभ्यता यूनान के बड़े २ नगरों में पैदा हुई है, यही कारण है कि नगरों की चार दिवारी में रहने से युरोपीय सभ्यता की दृष्टि निर्धारित हो गई है और यह भारतीय सभ्यता की न्याई उदार दृष्टि वाली नहीं रही।

नगरों में बहुधा मनुष्यों की ही कृति दृष्टि गत होती है, ग्रामों की न्याई ईश्वरीय शक्ति के चिह्न नहीं दीखते इसी कारण नगरोंके अन्दर बड़े २ महलों में निवास करने वालों के अतिरिक्त वृक्षों के नीचे ग्राम निवासी अधिक संतोषी तथा ईश्वर पर विश्वास रखने वाले होते थे। मनुष्य ईंट पत्थर चूने आदि के मकान निज इच्छानुसार बना सकते हैं परंतु वृक्षों का उगना और बढ़ना बहुधा प्राकृतिक नियमों के

आधीन होता है। वृक्षों के समीप रहने से प्राकृतिक नियमों का मूल तत्त्व मनुष्य सहज में जान सकते हैं

फलों से लदे हुए सुंदर वृक्षों से अधिक ईश्वरीय उदारता का और कोई चिह्न नहीं है। वृक्ष मनुष्य के लिए, पृथ्वी, वायु, सूर्य, चंद्रमा, और तारागणों से शक्ति खैंच कर फलों के स्वरूप में परिवर्तित कर देते हैं। अच्छे फल मनुष्यों के लिए बहुत ही पुष्टिकारक तथा लाभदायक होते हैं। सात्विक फलों के आहार से शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं और बुद्धि शुद्ध हो जाती है। अतएव ऋषि मुनि अधिकतया फलों पर ही जीवन व्यतीत करते थे। अब लोगों को वृक्ष लगाने का प्रेम नहीं रहा है इसी कारण फल बहुत महंगे मिलते हैं। फल महंगे होने से लोगों को बनावटी राजसी पदार्थ अधिक खाने पड़ते हैं। अतएव उन्हें शारीरिक रोग भी हो जाते हैं और काम क्रोध आदि उत्पन्न होकर चित्त में भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

सुंदर पुष्पों के देखने से मनुष्यों के हृदय में शुद्ध भाव उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव समस्त संसार के कार्य वृक्षों की महिमा का गुणगान किया करते हैं। सुगंधित वायु से बसंत ऋतु में मनुष्यों के अंदर एक प्रकार की मस्ती सी आ जाती है, यह शरीर तथा मन के लिए बहुत लाभदायक होती है। वर्तमान समय में वृक्ष तथा पुष्पों के कम हो जाने से शुद्ध सुगंधित हवा नहीं मिलती किंतु प्राकृतिक नियमानुसार मनुष्य का मन उसी मस्ती को खोजता है, इस ही अभाव के कारण मनुष्य मद्य-चरसादि विषयुक्त नशीली वस्तुयें पी कर अपना स्वास्थ्य तथा आयु नष्ट कर देते हैं। यदि सुंदर पुष्पों के वृक्ष पर्याप्त हों तो इस कृत्रिम नशे की आवश्यकता ही न पड़े, अतएव ग्रामों के अतिरिक्त महान् नगरों में जहां वृक्षादि पर्याप्त नहीं होते मनुष्य नशीली वस्तुओं का अधिक उपयोग करते हैं।

भारत वर्ष के विख्यात वैज्ञानिक आचार्य श्रीयुत जगदीशचंद्र बोस का कथन है "कि मुझे वृक्षों की विद्या पढ़ने, तथा उन के विषय में सोचने अथवा उन्हें देखने ही से इस विषय का ज्ञान हुआ कि मैं जीवन के अनंत सागर में रहता हूं" अर्थात् उन्हें जीवन के वास्तविक आधार परब्रह्म परमात्मा का चमत्कार वृक्षों के ही अवलोकन से हुआ।

भजन।

राग गोरी ॥ १ ॥

मंगल मूरति मारुत नंदन,
सकल अमङ्गल मूल निकंदन ॥ १ ॥
पवन तनय सन्तन हितकारी,
हृदय विराजत अवध विहारी ॥ २ ॥
मात पिता गुरु गणपति नारद,
शिवा समेत शम्भु शुक शारद ॥ ३ ॥
चरण वंदि विनवौं सब काहू,
देहू रामपद नेहु निबाहू ॥ ४ ॥
बंदौ राम लषन वैदेही,
जे तुलसी के परम सनेही ॥ ५ ॥

राग धनाश्री ॥ २ ॥

दानी कहुं शंकर से नाहीं।
दीन दयालु दिवोई भावत,
जाचक सदा सोहाही ॥ १ ॥

मारिकै मारु थप्यो जग में,
जाकी प्रथम रेख भट माहीं।
ता ठाकुर कौ रीझि निवाजिबौ,
कह्यौ क्यों परत मोहि पाहीं ॥ २ ॥
जोग कोटि करि जो गति हरि सों,
मुनि मांगत सकुचाहीं।
बेद विदित तोहि पद पुरारिपुर,
कीट पतंग समाहीं ॥ ३ ॥
ईसु उदार उमापति परिहरि,
अनत जे जाचन जाहीं।
तुलसीदास ते मूढ मांगने,
कबहूं न पेट अघाही ॥ ४ ॥

राग रामकली ॥ ३ ॥

जाचिये गिरिजा पति कासी,
जासु भवन अणिमादिक दासी ॥ १ ॥
औढर दानि द्रवत पुनि थोरे,
सकत न देखि दीन कर जोरे ॥ २ ॥
सुख सम्पति मति सुगति सुहाई,
सकल सुलभ शंकर सेवकाई ॥ ३ ॥
गेजे शरण आरति के लीन्हे,
निरखि निहाल निमिष महं कीन्हे ॥ ४ ॥
तुलसिदास जाचक जसुगावै,
विमल भगति रघुपति की पावै ॥ ५ ॥

राग रामकली ॥ ४ ॥

कस न दीन पर द्रवहु उमावर,
दारुण विपति हरण करुणा कर ॥ १ ॥
बेद पुरान कहत उदार हर,
हमरि बेरि कस भयहु कृपन तर ॥ २ ॥
कवनि भगति कीन्ही गुणनिधि द्विज,
होई प्रसन्न दीन्हेहु शिव पद निज ॥ ३ ॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं,
तुअ पर कीट पतंगरु पावहिं ॥ ४ ॥
देहु काम रिपु राम चरण रति,
तुलसी दास प्रभु हरहु भेद मति ॥ ५ ॥

राग रामकली ॥ ५ ॥

देव बड़े दाता बड़े शंकर बड़े भोरे।
किये दूर दुःख सबन के, जिन२ कर जोरे ॥
सेवा सुमिरण पूजिबौ, पात आपत थोरे।
दई जग जहं लगि सम्पदा, सुख गज रथ घोरे ॥
गवां बसत मैं नामदेव, कबहूं न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे ॥ ३ ॥
बेगि बोलि बलि बरजिये, करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रुंध्यो चहै सठ साखि निहोरे ॥४॥

राग रामकली ॥६ ॥

शिव शिव होई प्रसन्न करु दाया।
करुणा मय उदार कीरति बलि,
जाऊं हरहु निज माया ॥ १ ॥
जलज नयन गुण अयन मयन रिपु,
महिमा जानै न कोई।
बिनु तुअ कृपा राम पद पंकज,
सपनेहुं भगति न होई ॥ २ ॥
ऋषिय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर,
अवर जीव जग मांही।
तुम पद विमुख न पार पाव कोऊ,
कलप कोटि चलि जाहीं ॥ ३ ॥
अहि भूषण दूषण रिपु सेवक,
देव देव त्रिपुरारी।

मोह निहार दिवाकर संकर
शरण शोक भय हारी ॥ ४ ॥
गिरिजामन मानस मरालका,
सीस मसान निवासी ।
तुलसी दास हरि चरण कमल वर,
देहु भगति अविनासी ॥ ५ ॥

राग रामकली ॥ ७ ॥

भक्ति मुक्ति दायिनी भय हरनि कालिका ॥
मंगल मुद सिद्धि सदनि पर्व सर्वरीस वदनि,
ताप तिमिर तरुण तरणि किरण मालिका ॥ १ ॥
वर्म चर्म कर कृपान सूल सेल धनुष बान,
धरणि दलनि दानव दल रण करालिका ॥ २ ॥
पूतना पिशाच प्रेत डाकिनी साकिनी समेत,
भूत ग्रह बेताल खग मृगालि जालिका ॥ ३ ॥
जय महेश भामिनी अनेक रूप नामिनी ।
समस्त लोक स्वामिनी हिम शैल बालिका ॥ ४ ॥
रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम,
देहू ह्वै प्रसन्न पाहि प्रणत पालिका ॥ ५ ॥

सूर्य स्तुति ॥ ८ ॥

दीन दयालु दिवाकर देवा,
कर मुनि मनुज सुरा सुर सेवा ॥ १ ॥
हिम तम करि केहरि करमाली,
दहन दोष दुःख दुरित रुजाली ॥ २ ॥
कोक कोकनद लोक प्रकासी,
तेज प्रताप रूप रस रासी ॥ ३ ॥
सारथि पंगु दिव्य रथ गामी,
हरि शंकर विधि मूरति स्वामी ॥ ४ ॥
बेद पुरान प्रकट जसु जागै,
तुलसी राम भगति वर मांगै ॥ ५ ॥

राग धनाश्री ॥ ९ ॥

ऐसी हरि करत दास पर प्रीत ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस,
होत सदा यही रीति ।
जिन बान्धे सुर असुर नाग नर,
प्रबल कर्म की डोर ।
सोई अविछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि,
बान्ध्यो सकत न छोरि ॥ २ ॥
जाकी माया बश बिरंची शिव,
नाचत पार न पायो ।
करतल ताल बजाई ग्वाल जुवतिन,
तेही नाच नचायो ॥ ३ ॥
विश्वम्भर श्रीपति त्रिभुवन पति,
बेद बिदित यह लीख ।
बलि सौं कुछ न चली प्रभुता बरु,
ह्वै द्विज मांगी भीख ॥ ४ ॥
जाको नाम लिये छूटत भव,
जनम मरण दुख भार ।
अम्बरीष हित लागी कृपा निधि,
सोई जन्म्यो दश बार ॥ ५ ॥
जोग बिराग ध्यान जप तप करि,
जेहि खोजत मुनिज्ञानी ।
बानर भालु चपल पशु पांवर,
नाथ तहां रति मानी ॥ ६ ॥
लोक पाल जम काल पवन रवि,
शशि सब आज्ञा कारी ।
तुलसीदास प्रभु उग्रसेन के,
द्वार बेंत कर धारी ॥ ७ ॥

राग बिलावल ॥ १० ॥

रामचन्द्र रघुनायक तुम सों,
हौं बिनती केहि भान्ति करों ।
अघ अनेक अवलोकि आपने,
अनघ नाम अनुमानि डरों ॥ १ ॥
पर दुख दुखी सुखी पर सुख ते,
संत सील नहीं हृदय धरों ।
देखि आन की बिपति परम सुख,
सुनि सम्पति बिनु आगि जरों ॥ २ ॥
भगति बिराग ज्ञान साधन कहि,
बहु बिधि डहंकत लोग फिरों ।
सिव सरबस सुख धाम नाम तव,
बेंचि नरक पद उदर भरों ॥ ३ ॥
जानत हौं निज पाप जलधि जिय,
जल सीकर सम सुनत लरौं ।
रज सम पर औगुन सुमेरु करि,
गुन गिरि सम रजतें निदरों ॥ ४ ॥
नाना बेष बनाई दिवस निसि,
पर बित जेहि तेहि जुगति हरों ।
एकौ पल न कबहूं अलोल चित,
हित दै पद सरोज सुमिरूं ॥ ५ ॥
जो आचरण बिचारहु मेरो,
कलप कोटि लगि औटि मरों ।
तुलसी दास प्रभु कृपा बिलोकनि,
गोपदज्यों भव सिंधु तरौं ॥ ६ ॥

सवैया

धूत कहो अवधूत कहो,
रजपूत कहो जुलहा कहो कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहन,
काहू की जात बिगार न सोऊ ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को,
जाके रुचै सो कहो कछु ओऊ ।
मांग के खैबो मसीत को सोयबो,
लेबे को एक न देबे को दोऊ ॥ १ ॥

कवित्त

लाज को जहाज डूब्यो शील को समुद्र सूख्यो,
दया के खजाने की तालो कोऊ लै गयो ।
सत्य हूं की कोठी लूटी धर्म की धुजा ही टूटी,
पाप घर घर घट घट बीच छै गयो ॥
सन्तन को दोष कहा होत कोऊ देत नाहीं,
नाहीं को नकीब घर घर में कहू गयो ।
सन्त कहैं चेतरे तू चेतरे अचेती नर,
पुण्य धर्म दया बीज अंश कहूं रह गयो ॥

एक स्वांस खाली मत खोयलो खलक बीच,
कीचरु कलंक अंक धोयले तो धोयले ।
उर अंधियार पाप पुर सों भर्यो है तामें,
ज्ञान की चिराग चित्त जोयले तो जोयले ॥
मिनषा जन्म बार २ न मिलैगो मूढ़,
पूर्ण प्रभु से प्यारो होयले तो होयले ।
देह क्षण भंगुर यापे जन्मासुधारिबो सो,
बीज के झमके मोती पोयले तो पोयले ॥ १ ॥

कोऊ तो कहत ब्रह्म नाभि के कमल मध्य,
कोऊ तो कहत ब्रह्म हृदय में प्रकाश में है ।
कोऊ तो कहत कण्ठ नासिका के अग्र भाग,
कोऊ तो कहत ब्रह्म कुटी में वास है ॥
कोऊ तो कहत ब्रह्म दशवें द्वार बिच,
कोऊ तो कहत भंवर गुफा में निवास है ।
पिण्ड में ब्रह्मांड में निरंतर विराजे ब्रह्म,
सुंदर अखण्ड जैसे व्यापक आकाश है ॥ १ ॥

भक्ति के संरक्षक

१. राय बहादुर ला० सेवकराम जी एम. एल. सी, बार-ऐट-लॉ लाहौर १२५)
२. भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी ११५)
३. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट पटना १०१)
४. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)
५. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)
६. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)
७. श्रीमान् धाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)
८. राव श्रीराम रईस नांगल २५)
९. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)
१०. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)
११. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)
१२. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)
१३. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी २५)
१४. सेठ बनवारी लाल जी लोहिया, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। २५)
१५. चौ० नेतराम साहब सिरदावर हलका जाटूसाना जिला गुड़गाँवा। २५)
१६. बख्शी चाननशाह एम. ए., एल. एल. बी. इन्कम्टैक्स आफीसर जालंधर। २५)
१७. पं० मुक्तचन्द जी शर्मा (डहीना निवासी) अकाउण्टैन्ट हेड आफिस जयपुर २५)
१८. ला० नानकरणदास जी अग्रवाल भिवानी। २५)
१९. राजा रूपसिंह जी रईस जिहाजगढ। २५)
२०. पं० गोपीनाथ जी [बिहाली निवासी] मालिक फार्म
काशीनाथ बच्चूमल गली परांवटा दिल्ली २५)

सहायक।

चौ० हुकमसिंह जी निखरी ११)
१. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
२. बा० ब्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)

३. राव बलवन्तसिंह जी मु० जैतपुर तहसील रेवाड़ी। ५)
४. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० जोरावरसिंह जी शिशन मल अलीगढ़। ५)
५. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
६. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'सनातन' इलाहाबाद बैंक देहली। ५)
७. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, मंगलूर। ५)
८. ला० भगवान दास जी, ऑडिट क्लर्क सैक्रेटरी इनलास खास आफिस मंगलूर ५)
९. महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर चरणदास सयान बल्लीमारान दिल्ली ५)
१०. मि० एल. के. मिसरा इंस्पेक्टर, पोस्ट आफिस जयपुर ५)

पढ़ने योग्य पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित मूल्य ॥=)
२. सारसंग्रह मूल्य ≡)
३. शब्द संग्रह मूल्य ।)॥
४. भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त मूल्य ।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला मूल्य -)।
६. वेदोपनिषत् मूल्य ।-)
७. ज्ञानधर्मोपदेश मूल्य -)॥
८. भाषा फक्किका प्रकाश मूल्य ॥)

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।